RNI क्र. 50309/85 डाक पंजियन क्र. म.प्र. /261/भोपाल 2015-2017 प्रकाशन तिथि: 22 मार्च

बाल विज्ञान पत्रिका अप्रैल 2015

चकमक

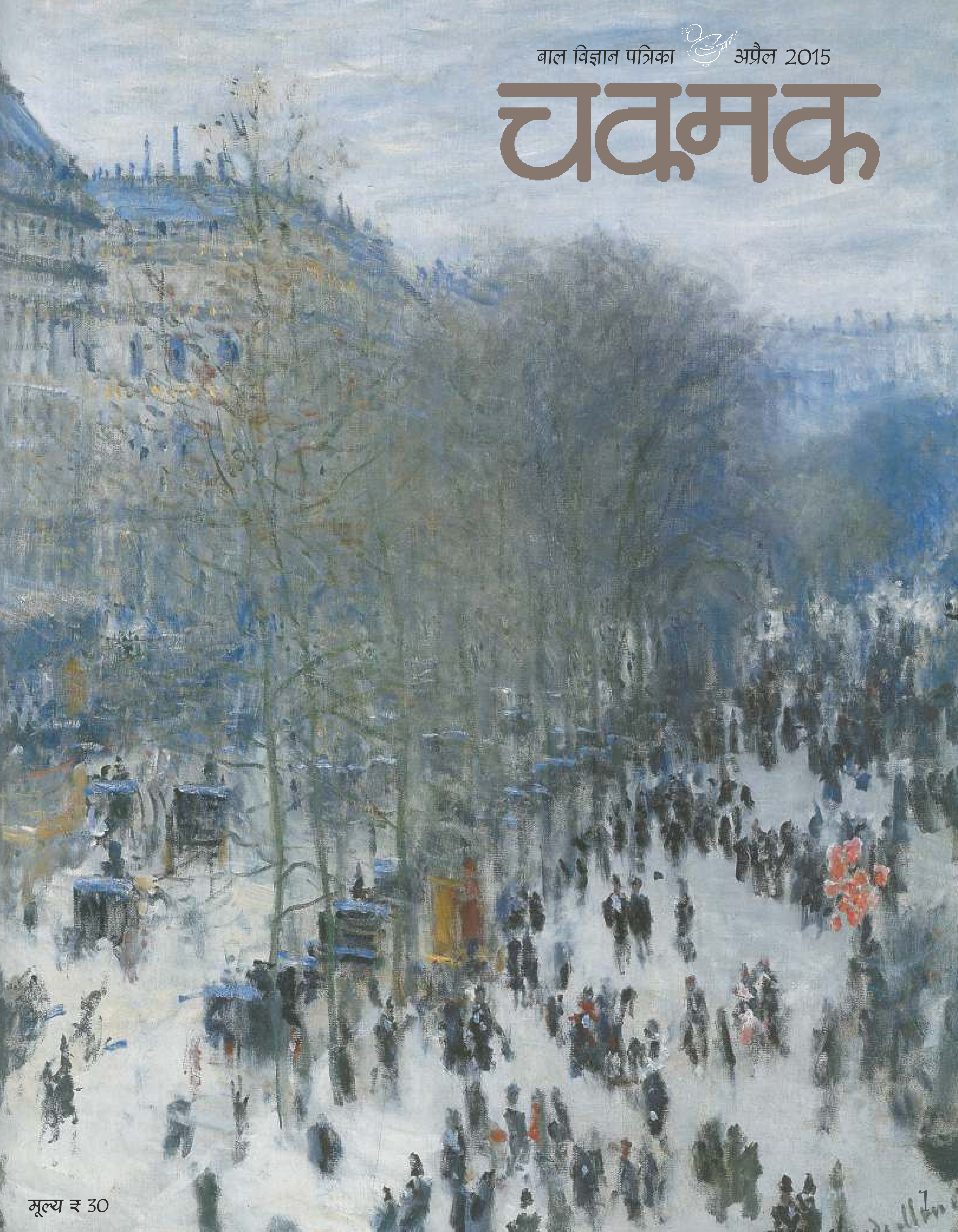

मूल्य ₹ 30

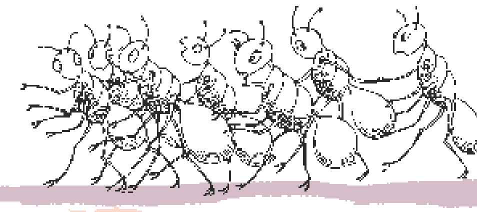

हमने पकाई है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है – दुबली चींटी सबसे आगे थी...

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

आज
रात का आसमान रोज़
बदलता है।
कई तारे और ग्रह कभी
दिखते हैं, कभी नहीं।
कुछ तो अपनी जगहों
से ही सरक जाते हैं।
चाँद तो इस मामले में
बड़ा उस्ताद है।
कभी गोल-गोल,
कभी फाँक-फाँक।

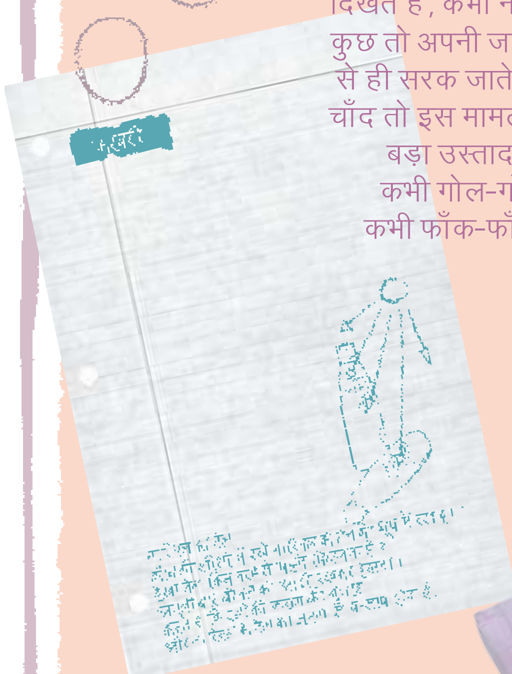

अप्रैल 2015 से मार्च 2016 की
इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें –

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in

कीमत: 100 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे
भुगतान एकलव्य के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 343 अप्रैल 2015

इस अंक में

4 मैं मोर जमीन ला बचावत हूँ.../ रिनचिन
8-9, 43 बोली रंगोली
10 पत्र/ असगर वजाहत
11 एक गतिविधि/ आमोद कारखानिस
12 एक था हाजी एक था नाजी/ स्वयं प्रकाश
14 एक बूँद तोड़ी...
16 दोस्त/ शशि
18 भाषा/ इन्द्राणी रॉय
20 जर्रा जर्रा कजर्रा/रश्मि पालीवाल
25, 32 मेरा पन्ना
26 जंगल की एक घटना/अमित कुमार
29 क्लॉड मोने और बुलेवार दस कैपुसिनो
30 घर/ इस्सा, विष्णु नागर, दिविक रमेश
33 माथापच्ची
34 दरोज़ – मिट्टी में रची-बसी ज़िन्दगी/ दिपाली दरोज़
38 चूज़े की एक माँ/ दिलीप चिंचालकर
40 मगरमच्छ/ जसबीर भुल्लर
42 फनी पाठशाला/ इरफान
44 चित्रपहेली/ कविता तिवारी

मुखपृष्ठ के चित्र **बुलेवार दस कैपुसिनो** पर एक टिप्पणी

क्लॉड मोने का जन्म 1840 के बाल दिवस पर फ्रांस में हुआ था। उनके पिता परचून के व्यापारी थे। क्लॉड ज़िद कर के चित्रकार बने। उन दिनों जब दूसरे चित्रकार लूव्र संग्रहालय में टँगी तस्वीरों की नकल किया करते थे तब मोने रंग-ब्रुश लेकर अपने कमरे की खिड़की में बैठते और बाहर दिखाई देनेवाले दृश्य बनाते। शायद वे पैरिस की कैपुसिनो नामक चौड़ी सड़क के आसपास ही रहते थे क्योंकि यह तस्वीर उसी सड़क की है। बात सन् 1873-74 की है। ये फ्रांसिसी क्रान्ति के दिन थे। लोगों के मन में आनेवाले ज़माने के प्रति उत्साह था। और यही मोने अपने चित्र में दिखाना चाहते थे कि सब कुछ किस तरह पहले से बड़ा और खुला-खुला है। यह स्वतंत्रता की उनकी कल्पना थी और लोग उसका आनन्द ले रहे हैं।

मोने बन्द स्टूडियो की बजाय खुले आकाश के नीचे चित्र बनाते थे। छोटी-बड़ी बारीकियाँ टीपने की बजाय दृश्य मोटे तौर पर जिस तरह नज़र आते हैं, वैसा बनाते। यानी जैसा प्रभाव वे देखनेवाले पर डालते हैं। यह प्रभाववाद या इम्प्रैशनिस्ट शैली की शुरुआत थी। 1899 के बाद उन्होंने वॉटर लिली (कमल परिवार के फूल) के खूब चित्र बनाए जो बहुत प्रसिद्ध हुए। *टाइटैनिक* फिल्म में नायिका के पास फैशनबल चित्रों के संग्रह में ये चित्र भी शामिल थे।

- दिलीप चिंचालकर

भाव्या जिन्दल,आठवीं, डीपीएस, लुधियाना

आवरण चित्र
क्लॉड मोने
साभार मोने - द ट्रिम्फ ऑफ इम्प्रैश्निज़्म, डेनियल वाइलडेनस्टीन, प्रकाशक ताशचेन

हाशिए के चित्र
प्रशान्त सोनी

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

एक प्रति :	30.00	- व्यक्तिगत
	50.00	- संस्थागत
वार्षिक :	300.00	- व्यक्तिगत
	500.00	- संस्थागत
तीन साल :	800.00	- व्यक्तिगत
	1350.00	- संस्थागत
आजीवन :	4000.00	- व्यक्तिगत
	6000.00	- संस्थागत

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

मैं मोर जमीन ला बचावत हूँ...

रिनचिन

स्कूल से आते ही मति आँगन से होती हुई पीछे भागी। घर के ही पीछे बाड़ी थी। और बाड़ी के पीछे उनके दो खेत। वहाँ उसके पिता और दादी ज़मीन से आलू निकाल रहे थे। वो भी साथ काम करने लगी। आलू खोद-खोदकर अपनी टोकरी में भरने लगी। जैसे ही टोकरी पूरी भर जाती वो उसे खेत के पास रखे बड़े टोकरे में पलट आती। टोकरी बहुत भारी हो गई थी। फिर भी उसने उसे उठाकर ले जाने की कोशिश की। “अरे, भारी होगी वो।” पिता ने टोका। “रुक मैं उठा लेती हूँ।” दादी बोलीं। पर मति ने एक न सुनी। लड़खड़ाते कदमों से वो उसे उठाकर चलने लगी। सामने का कुछ नहीं दिख रहा था। वो कुछ ही कदम चली होगी कि धड़ाम से गिर गई। आलू चारों ओर बिखर गए। उसने आसपास

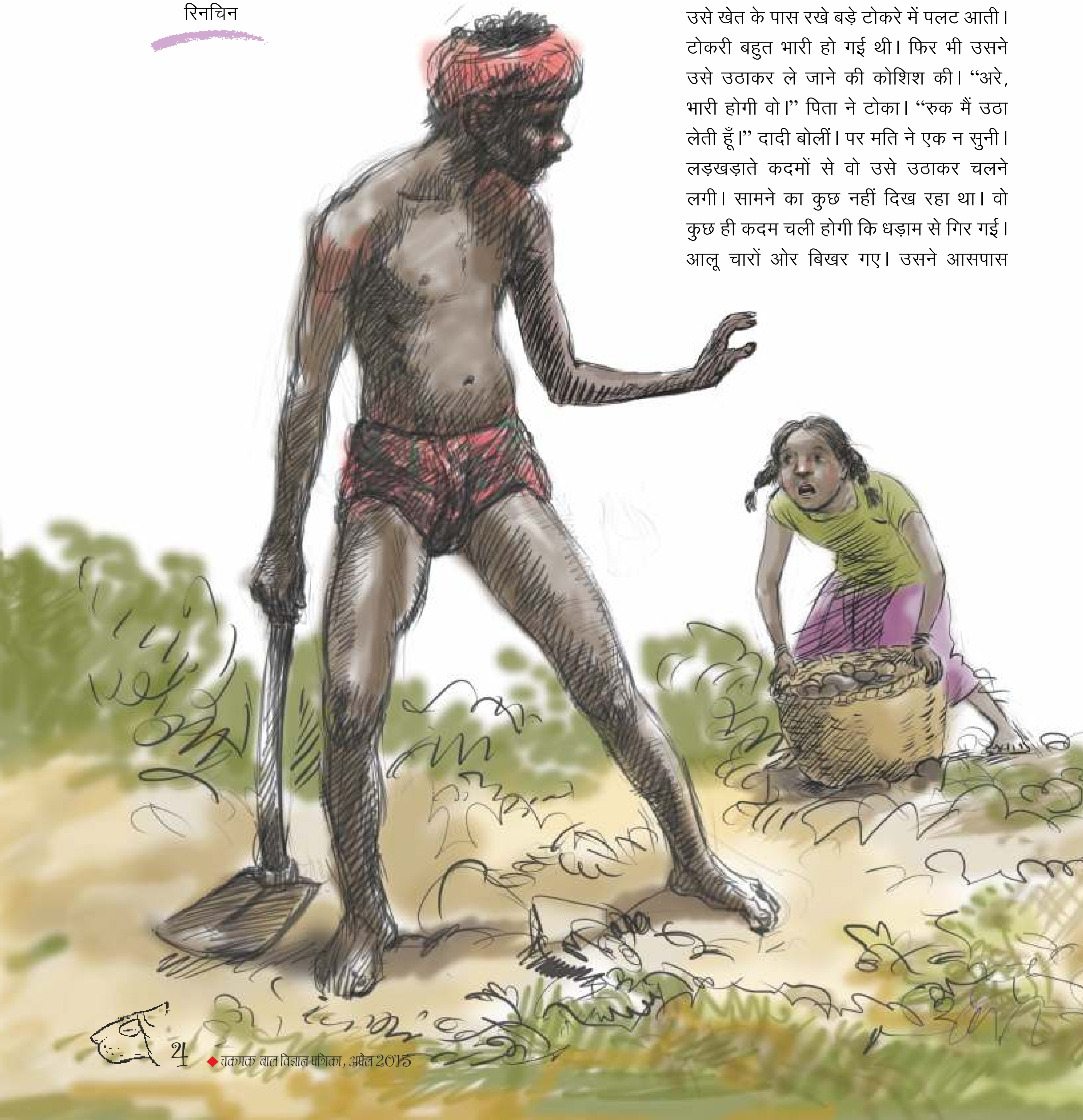

देखा। उसकी रुलाई छूटने ही वाली थी कि पिता ने पीछे से आकर आलुओं को बटोरना शुरू कर दिया। "दो-तीन बार में लाएगी तो गिरेगी नहीं।" पिता की कही बात पर मति ने ध्यान दिया और वैसा ही करने लगी। किनारे रखी दोनों बड़ी टोकरियाँ भर गईं तो पिता ने उन्हें एक बड़े बाँस के दोनों सिरों पर टाँगा। बाँस को कन्धे पर रखा और घर की ओर चल दिए।

खेत में पिता फावड़े से मिट्टी उलीचते और दादी और मति आलू निकालते। "ये मेरा सोना हैं।" वो अकसर कहते।

मति ने फावड़ा उठाया। "उसे रख दे।" पिता ज़ोर-से चिल्लाए। "वो बहुत भारी है। तुझे लग जाएगा और फसल खराब होगी सो अलग।" पर मति कहाँ सुननेवाली थी। उसने फावड़ा उठाया और ढीले हाथों से उसे चलाने लगी। तभी पिता तीन बड़े और गुस्सैल कदमों से उस तक पहुँचे और उसके हाथ से फावड़ा छीन लिया। "इधर दे मेरा फावड़ा। और देख मेरा पूरा खेत खराब कर दिया।"

"मेरा खेत है।" मति गुस्से-से बोली।

"तेरा खेत तू अपनी ससुर बाड़ी में ढूँढना।" पिता ने अबकी बार हलके लहज़े में कहा।

"ये तू कह रहा है, तू... जिसे उसकी माँ ने अकेला पाला-पोसा है!" दादी तल्खी से बोलीं।

पिता सकपका गए, "दाई गुस्सा क्यों होती है...? मैं तो यूँ ही मज़ाक कर रहा था..."

पर दादी उदास-गम्भीर रहीं। "अपने अधिकार पाने के लिए कितना तो करना पड़ा मुझे! और अब तू यह सब कह रहा है! ऐसा मज़ाक भी तकलीफ देता है।" कहते हुए दादी टमाटर की बाड़ी की ओर चल दीं और क्यारी से एक-एक टमाटर तोड़ने लगीं। मानो उसके और उसके पिता के बीच थोड़ी दूरी बरतने की कोशिश में हों। पिता उठे और अपनी माँ के पास जा बैठे। शायद अपने कहे की भरपाई की कोशिश में हों। मति को इतना तो पता चल गया था कि दादी किसी बात पर उसके पिता से गुस्सा हैं। वो चुपचाप दादी की बगल में बैठ गई और दोनों पिता को गुस्से-से देखने लगे।

"अरे बाबा, वो तो मैंने यूँ ही कह दिया था ना। क्या तुम लोग इसके लिए मुझे कभी माफ नहीं करोगे?"

"नहीं, क्योंकि तू भी बाकी आदमियों की तरह ही सोचता है।" दादी बोलीं। "अच्छा है कि तेरी बेटी मुझ से ज़्यादा होशियार है।"

"और तुम-सी ज़िद्दी भी..." पिता बोले।

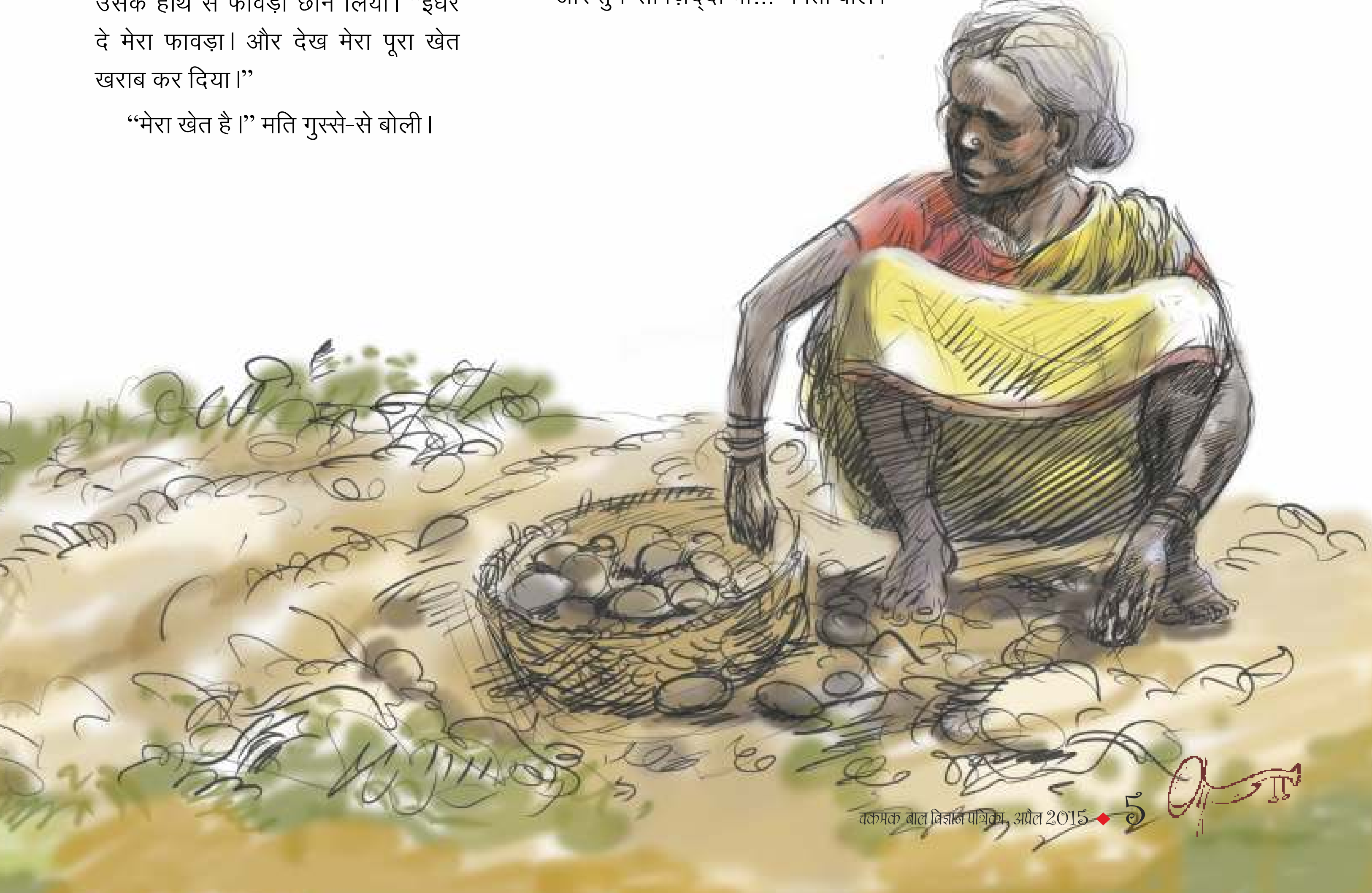

"अगर ज़िद्दी न होती तो यह ज़मीन मुझे कभी नहीं मिलती।" यह सुनकर तो पिता पूरी तरह से परास्त हो गए। वे संकोच में मुस्कराए और काम पे लग गए। मति जानती थी कि वे जिस खेत में खेती कर रहे हैं वह उसकी दादी के माता-पिता का है। दादी उनकी इकलौती सन्तान थी। और जब उनके माँ-बाप नहीं रहे तो दादी ने वापस आकर खेत पर अपने कब्ज़े का दावा किया। तब तक कुछ ऊँची जाति के लोग वहाँ खेती करने लगे थे। वे बोले कि यह अब गाँव की ज़मीन है। जब तक उनके माँ-बाप ज़िन्दा थे, यह उनकी ज़मीन थी। पर उनके मरने के बाद यह ज़मीन वापस पंचायत के पास आ गई है। अब कैसे वो इस ज़मीन पर अपना अधिकार जमा सकती हैं! उनका अधिकार तो अब अपने ससुर की बाड़ी पर ही हो सकता है। और नीची जाति के लोग कब से एक पीढ़ी से दूसरी को ज़मीन देने लगे! पर दादी ने अपनी पूरी ताकत लगा दी। वो कोर्ट गईं। गाँव के ऊँची जाति के लोग उन्हें रोज़ धमकाते थे। अकसर दादी की खड़ी फसलों में अपने मवेशी छोड़ देते। पर दादी ने हिम्मत नहीं हारी। लड़ती रहीं जब तक एक कोर्ट केस से उन्हें उनका अधिकार नहीं मिल गया। हालाँकि जो मिला वो आधा ही था।

दादी ने जल्द ही पिता को माफ कर दिया। अब वो फिर से पहले की तरह बातें करने लगे थे। पर यह ख्याल कि वो खेत उसका नहीं है मति को परेशान किए हुए था। उसने तय कर लिया कि उसे अपना खेत चाहिए ही चाहिए। अब वो रोज़ अपने पिता और दादी के पीछे लगी रहती कि उसे उसका खेत चाहिए। उसका अपना खेत।

तो एक दिन दादी बाज़ार से उसके लिए एक फावड़ा ले आईं। फिर उसे खेत के उस हिस्से में ले गईं जहाँ तीन पेड़ थे। वहाँ उन्होंने मति के साथ दस-दस कदम नापे और खेत के एक चौरस टुकड़े पर निशान लगा दिए। और बोलीं, "ये रहा तेरा खेत। अब इसका ख्याल रखना। आलू तो उखाड़ लिए हैं अब ते का उगाबे तोर खेत मा?" "मेह सबला उगाहूँ – धान, टमाटर, भिण्डी, झुँगा, आलू..।" मति कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती थी। जो भी बड़ी बाड़ी में था वो उसे अपनी छोटी बाड़ी में भी चाहिए था।

हर दिन दादी उसे बतातीं उसे क्या करना है। कैसे करना है। मति बड़ी मेहनत करती। स्कूल से सीधा खेत आ जाती। उसने सींचने के लिए नालियाँ बनाईं। छोटी-सी बाड़ बनाई। बीज बोए। खरपतवार उखाड़ा। वो दादी के साथ दूसरे खेतों में भी काम करती पर ध्यान उसका अपने खेत में ही ज़्यादा रहता। पिता को तो अपने खेत के पास फटकने तक नहीं देती। "तुम जाओ अपने खेत में। यह मेरा है।" वो हँसते और अपने खेत में काम करते रहते। अब तो लोग भी उससे कहने लगे थे, "नौनी, तेरी बाड़ी तो बहुत अच्छी है। पूरे गाँव की सबसे अच्छी बाड़ी।" उसकी गर्दन तन जाती।

उन दिनों गाँव में कई मीटिंगें हो रही थीं। दादी हर मीटिंग में जातीं। कभी उसे भी साथ ले जातीं। उसे पता चला कि गाँव में कोयले की खदानें खुदनेवाली हैं। कम्पनियाँ इसके लिए ज़मीनें खरीदने में लगी हुई हैं। कम्पनीवाले उसके गाँव के किसानों से भी अपनी ज़मीन बेचने को कहने लगे थे। ज़मीन के बदले वे उन्हें बहुत सारा पैसा देनेवाले थे। इतने पैसे जिससे वे जो चाहे कर सकते थे – नया घर बना सकते थे। मोटरसाइकिल या जीप खरीद सकते थे। अपने बच्चों को महँगे स्कूलों में पढ़ा सकते थे।

गाँव में अलग-अलग बातें चल रही थीं। कुछ लोग अपनी ज़मीनें बेचने को तैयार थे। पर बहुत सारे छोटे किसान इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। वे कहते, "हम अपनी ज़मीनें नहीं बेचेंगे। पैसे का क्या। इधर आया, उधर गया। पता भी नहीं चलेगा और खत्म हो जाएगा।"

"हम खेती-किसानी नहीं करेंगे तो करेंगे क्या? हमें यही तो आता है। इसके बिना हम जिएँगे कैसे?"

बड़े किसानों के लिए यह फायदे का सौदा हो सकता था। उन्हें पता था कि पैसों से उन्हें करना क्या है। पर छोटे किसान क्या करेंगे? और वो जिनकी अपनी ज़मीन नहीं है वे कहाँ जाएँगे? दूसरे गाँव के लोग भी अब मीटिंगों में आने लगे थे। सब कम्पनी के खिलाफ एकजुट होने की बात कर रहे थे। दूसरे गाँवों में क्या हुआ है उसे देखोगे तो जानोगे कि हमारे साथ भी क्या हो सकता है!

मति को अब चिन्ता होने लगी थी। एक और जना अब उसकी ज़मीन के पीछे पड़ गया था!

एक दफा जब पिता और दादी दूसरे गाँव मीटिंग के लिए गए थे तो मति भी उनके साथ हो ली। वो गाँव कोयले की एक खदान की बगल में था। काला बुरादा सड़कों को ढाँपे हुए था। हर तरफ काली धूल ही धूल थी। गाँव में कई घर खाली पड़े थे। लोग इन्हें बेचकर जा चुके थे। जो पीछे रह गए थे वे अपनी ज़मीन और खदान के बीच हदें बाँध रहे थे। ताकि उनकी मर्ज़ी के बिना कोई वहाँ न आ सके। मीटिंग में आए लोगों को सब दिखाया गया। गाँव के बाहर एक गहरा गड्ढा था। उसे देख दादी कम्पनीवालों को ज़ोर-ज़ोर से कोसने लगीं। गड्ढा इतना बड़ा, काला और डरावना था कि मति का जी मिचलाने लगा। गड्ढे के पास कोयले के बुरादे का एक बड़ा काला पहाड़ खड़ा था। क्या उसका गाँव भी ऐसा हो जाएगा। और उसका खेत?

अब मीटिंगें देर रात तक चलने लगी थीं। मति दिन में बच्चों के साथ खेलती। उसका खेत, खदान और उसके हड़पे जाने की चिन्ता थोड़ी देर के लिए उसके ज़ेहन से निकल गई थी। जब तक बड़े लोग मीटिंग से वापस आते बच्चे खा-पीकर सो चुके होते।

उस रात मति की नींद बीच में खुली। गहरा अँधेरा था। कमरे के एक कोने में वह बाकी बच्चों के साथ सोई हुई थी। उसने देखा कि बड़े लोग खाना खा रहे थे। कुछ थोड़े बड़े लड़के-लड़कियाँ उन्हें खाना परोस रहे थे। खूब ज़ोर-शोर से बातें हो रही थीं। खाने के बाद कुछ बड़े तो सोने लगे पर कुछ फिर से बाहर जाने के लिए लालटेन वगैरह जलाने लगे थे। मति को बड़ी हैरानी हुई। इस वक्त कहाँ जा रहे हैं वो सब!

उसने पास लेटे अपने नए बने एक दोस्त से धीरे-से पूछा। वो भी चुपचाप जगा हुआ था।

"गाँव की सीमा की चौकीदारी करने। वो बारी-बारी से वहाँ पहरेदारी करते हैं। रोज़ रात को यही होता है। ऐसा इसलिए कि बुलडोज़र रात में अन्दर न आ जाएँ।"

"बुलडोज़र..."

"हाँ और जेसीबी भी।"

"ये जेसीबी क्या होता है?" मति फुसफुसाई।

"एक बड़ी बहुत बड़ी मशीन। उसके आगे मुँह जैसा एक

(शेष भाग पेज 31 पर)

रात को दादी पड़ोसियों के घर गईं। जब लौटीं तो मति कहीं नहीं दिखी। "नौनी कहाँ गई?" दादी ने पिता से पूछा। "अभी तो यहीं थी।"

चित्रः शुद्धसत्त्व बसु

अदिति, सातवीं, डीसी मॉडल स्कूल, पंचकूला, हरियाणा

अच्छे भले थे पूरे थे
हर बात में मगर
आइने में देखा तो
दो टुकड़े हो गए
- गुलज़ार

दोस्तो,

खूब चित्र मिले। कविता को भी खूब समझा। आइने में दो टुकड़े हो जाने की बात भी खूब समझी। कुछ चित्र बने बड़े अच्छे हैं पर आइने को टूटा दिखाया गया है।

अर्नव गुप्ता, पाँचवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

बोलीरंगोली

आद्या, बारह वर्ष, ओल्ड मुरुदम फार्म स्कूल, थिरुवन्नमली, तमिलनाडु

गुलज़ार साब के पसन्दीदा सात चित्र पेश हैं। इन्हीं में से कुछ चुनिन्दा चित्र तुम अगले अंकों में मेरा पन्ना में देखोगे।

इन सभी को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी।

पहले सात

मई की कविता सुनोः

जेवर खरीदने ज़मीन रात गई थी
तारे सजा के आसमान बैठा हुआ था

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 15 अप्रैल तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

हमारा पता है – चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16 (फोन – 09425010115)

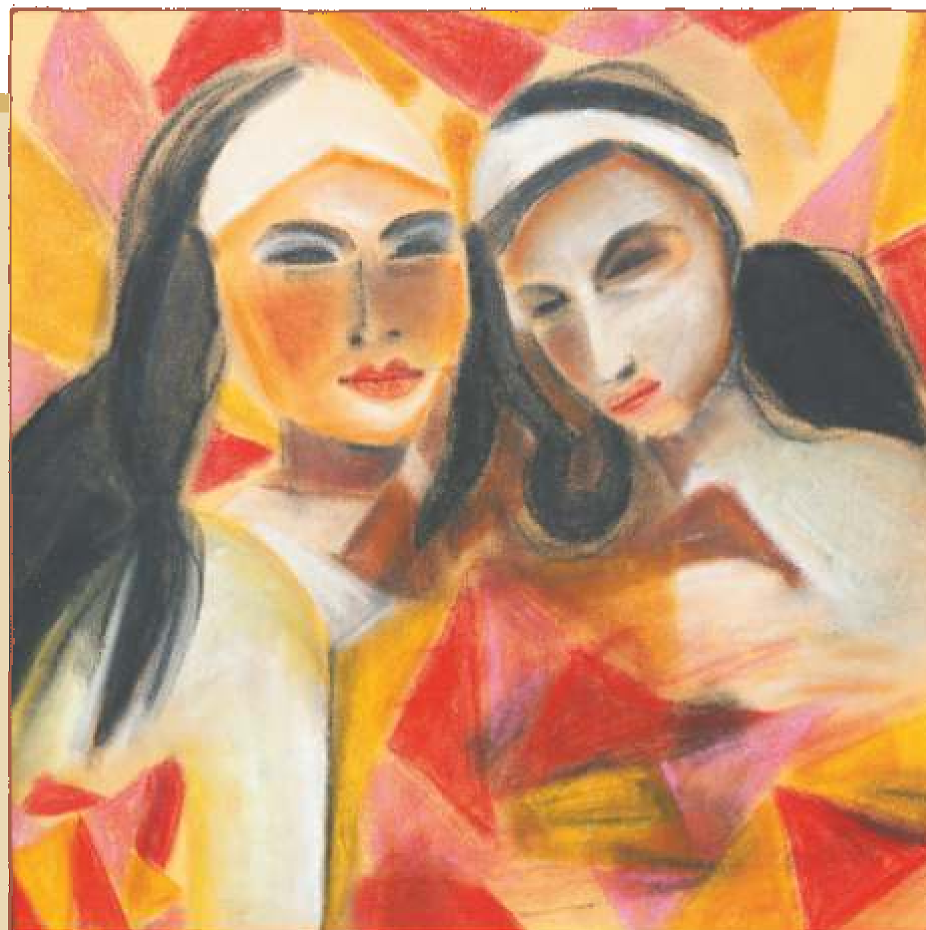

अमर्त्य तीर्थ भौमिक, बारहवीं, दून स्कूल, देहरादून

सई मिलिन्द थत्ते, दूसरी, पाटीलपारा, पालघर, महाराष्ट्र

श्रेयांश सृजन, पाँचवीं, डीपीएस, पटना

प्रथम बंसल, आठवीं, दून स्कूल, देहरादून

असग़र वजाहत
79, कला विहार
मयूर विहार - I
दिल्ली 110091
awajahat45@gmail.com

4.3.15

प्रिय युवा मित्रों

एक विचार आया है मन में। सोचा तुम लोगों के साथ साझा करूँ और तुम्हें उसमें शामिल करने की कोशिश करूँ।

क्यों न हम लोग मिल कर नाटक लिखें? यदि तुम्हारे पास नाटक लिखने लायक कोई कहानी/घटना/अनुभव हो तो 'चकमक' के माध्यम से मुझे बताओ। कमसे कम शब्दों में 'आइडिया' लिख कर भेज दो। इसके बाद हम लोग काम आगे बढ़ायेंगे। अभी काफ़ी समय है तुम्हारे पास। 31 मई 2015 तक तुम हमें 'आइडिया' भेज सकते हो।

तुम्हारा
असग़र वजाहत

प्रिय दोस्तो,

असगर वजाहत हमारे देश के जाने-माने रचनाकार हैं। उन्होंने कई विधाओं में लिखा है। उनका नाटक "जिन लाहौर नई वेख्या ओ जन्मयाई नईं" किसने नहीं देखा होगा! दुनिया भर में उसके हज़ारों शो हुए हैं।

वजाहत साब की चिट्ठी तुमने पढ़ी। क्या खूबसूरत मौका है न! तो अपनी आइडिए हमें भेज दो। जिनके आइडिए वजाहत साब को जँचेंगे उन्हें नाटक लेखन कार्यशालाओं में भाग लेने का मौका मिलेगा। और उनके साथ तुम अपने-अपने नाटकों पर काम कर सकोगे। ये नाटक हम चकमक में प्रकाशित करेंगे। इनकी एक किताब छापने का भी विचार है। और सोचते हैं कि इनका मंचन भी हो। अच्छा है न ये सपना! तो चलो इसे पूरा करने की कोशिश करते हैं।

आइडिए भेजने के लिए
ये रहा चकमक का पताः
चकमक
ई-10 शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल - 462 016
फोनः 0755 4252927
ईमेल - chakmak@eklavya.in

एक गतिविधि

आमोद कारखानिस

चित्रः अतनु राय

बचपन में खाना खाते समय माँ अकसर एक खेल खेलतीं। रोटी का एक टुकड़ा ले कहतीं, “ये चिऊँ (मराठी में गौरैया को प्यार से चिऊँ कहते हैं) का हिस्सा है, ये काऊँ (कौआ) का और ये लो तुम्हारा।” और इस खेल में चिऊँ, काऊँ के साथ हम भी खा लेते थे। उस समय घरों के आसपास बहुत सारी गौरैया दिखती थीं। अब उतनी नहीं दिखतीं। सोचो, ऐसा क्यों हुआ होगा? गाँव कस्बों में तो घरों के आसपास आज भी अमूमन सबसे ज़्यादा गौरैया ही नज़र आती है। पर शहरों में तो ये कम से कमतर होती जा रही हैं।

यहाँ जो तुम्हें करना है वो यह कि अपने घर में बालकनी, छत या आँगन में कोई ऐसी जगह चुनो जहाँ ज़्यादा आवाजाही नहीं होती हो। वहाँ मुट्ठी भर चावल, गेहूँ या कोई अन्य अनाज बिखेर दो। दाना डालते ही गौरैया उसे खाने नहीं आएगी। वो थोड़ा डरती है। दाना डालकर तुम उस जगह से कहीं दूर बिना आवाज़ किए छिपकर बैठ जाना। चाहो तो वहाँ से दूर चले जाना और आधे-एक घण्टे बाद दबे पाँव आकर देखना कि चड़िया आई कि नहीं!

गौरैया आए तो देखना कि वो कैसे चलती है? उसका चलना कबूतर, मुर्गी या कौए के चलने जैसा है या अलग है?

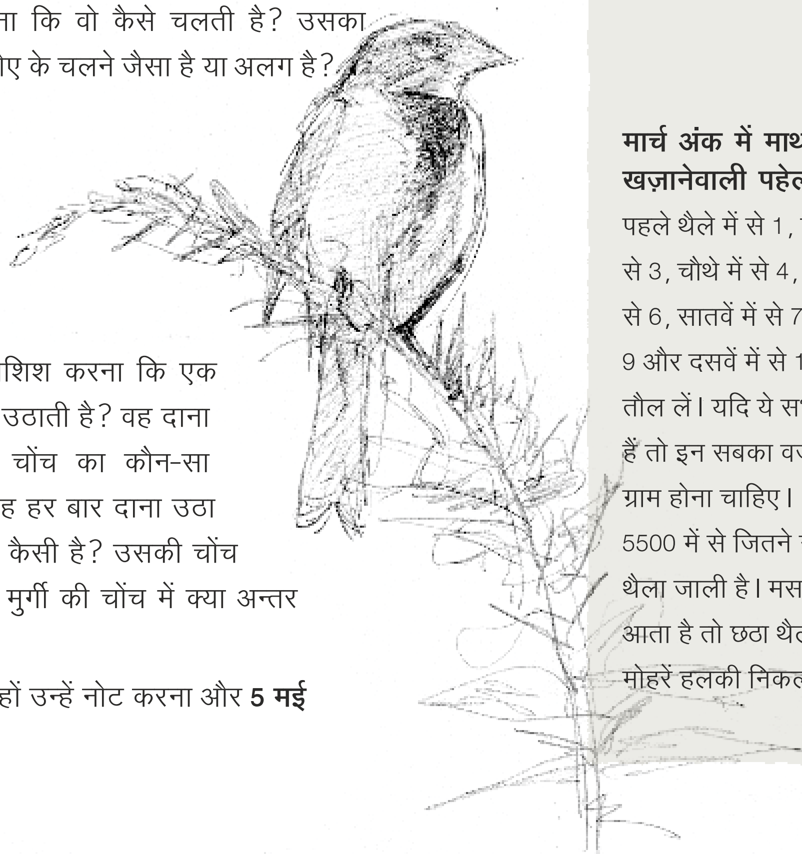

यह भी देखने की कोशिश करना कि एक बार में गौरैया कितने दाने उठाती है? वह दाना कैसे खाती है? उसकी चोंच का कौन-सा हिस्सा हिलता है? क्या वह हर बार दाना उठा पाती है? गौरैया की चोंच कैसी है? उसकी चोंच और कबूतर, कौए, बाज़, मुर्गी की चोंच में क्या अन्तर हैं? क्या समानताएँ हैं?

तुम्हारे जो भी अनुभव हों उन्हें नोट करना और **5 मई** तक हमें ज़रूर भेज देना।

पहेली

मार्च अंक में माथापच्ची में छपी खज़ानेवाली पहेली का उत्तर

पहले थैले में से 1, दूसरे में से 2, तीसरे में से 3, चौथे में से 4, पाँचवें में से 5, छठे में से 6, सातवें में से 7, आठवें में से 8, नौवें से 9 और दसवें में से 10 मोहरें निकालकर तौल लें। यदि ये सभी 55 सभी मोहरें ठीक हैं तो इन सबका वज़न 55x100 = 5500 ग्राम होना चाहिए।

5500 में से जितने ग्राम वज़न कम है वही थैला जाली है। मसलन यदि वज़न 5494 आता है तो छठा थैला जाली है क्योंकि छह मोहरें हलकी निकलीं।

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

चित्रः अतनु राय

जज नाजी ने गवाह हाजी से पूछा, “जिस वक्त चोरी हुई उस वक्त कितने बजे थे?”

“हुज़ूर! दो मेरे सिर पर बजे थे और दो मेरे बेटे के सिर पर।”

गवाह हाजी ने जवाब दिया।

“मूरख! घड़ी में कितने बजे थे?” जज नाजी ने पूछा।

“घड़ी तो हुज़ूर एक में ही टूट गई थी!”

गवाह हाजी ने भोलेपन से जवाब दिया।

सन् 2012

क्या आपके टूथपेस्ट में नमक है?

सन् 2014

क्या आपके टूथपेस्ट में नमक और नींबू है?

सन् 2016

क्या आपके टूथपेस्ट में चाट मसाला है?

सन् 2020

क्या आपके मुँह में दाँत हैं?
न हों तो इस्तेमाल करें रेडीमेड हाजी-नाजी दाँत।

◆ ◆ ◆

नाजीलाल कबाड़िया नकली नोट बनाने का काम करते थे। वे हज़ार रुपए का एक नोट रोज़ बनाते और शाम के बाद उसे धीरे-से बाज़ार में कहीं चला देते।

एक दिन गलती से हज़ार रुपए की जगह नौ सौ रुपए का नोट बन गया। अब इसका क्या करें? शहरवाला तो कोई इसे लेगा नहीं! क्या किया जाए!

नाजीलाल कबाड़िया परेशान हो गए।

आखिर उन्होंने सोचा इसे किसी गाँव में चला देते हैं और गाँव भी ऐसा देखेंगे जहाँ बिजली न हो!

तो नाजीलाल कबाड़िया ऐसे ही एक गाँव में पहुँचे और वहाँ के एक सम्पन्न व्यक्ति हाजीलाल गवाड़िया के घर गए और बोले, "मैं ज़रा परेशानी में फँस गया हूँ। गाँव में कहीं इसके खुल्ले पैसे नहीं मिल रहे हैं। क्या आप मेहरबानी करके यह नोट तुड़ा सकेंगे?"

हाजीलाल गवाड़िया ने नाजीलाल कबाड़िया के हाथ से नौ सौ का नोट लिया उसे ध्यान से देखा और बोले, "दो मिनट ठहरो। अभी आता हूँ।" और घर के भीतर चले गए।

नाजीलाल कबाड़िया खुश कि नौ सौ का नोट चल गया।

कुछ देर बाद हाजीलाल गवाड़िया बाहर निकले और नाजीलाल कबाड़िया को साढ़े चार-चार सौ के दो नोट पकड़ा दिए।

हज्जू भाई और नज्जू भाई दोनों एक बड़ी-सी बिल्डिंग की पाँचवीं मंज़िल पर एक कमरे में साथ-साथ रहते थे। दोनों में इतना प्यार था कि वे अबे गधे, नालायक जैसे सुन्दर शब्दों को लगाए बगैर एक-दूसरे से बात नहीं करते थे।

एक दिन नज्जू भाई जल्दी में कहीं जा रहे थे। वे पाँच मंज़िल नीचे उतर आए तब जाकर ध्यान आया कि अपना रूमाल और घड़ी ऊपर ही भूल आए हैं। बिल्डिंग में लिफ्ट थी नहीं। क्या करें? उन्होंने नीचे से ही अपने दोस्त हज्जू भाई को आवाज़ लगाई, "अबे हज्जू के बच्चे!"

"हज्जू के बच्चे" ने झाँककर पूछा, "क्या हो गया? क्यों भौंक रहा है?"

"यार मैं जल्दी-जल्दी में घड़ी और रूमाल ऊपर ही भूल आया हूँ। ज़रा फेंक दे भाई!"

हज्जू भाई ने ऊपर से घड़ी फेंकने से पहले पूछा, "झेल लेगा?"

"अबे इत्ते दिनों से तुझे झेल रहा हूँ तो एक घड़ी नहीं झेल पाऊँगा? तू बिन्दास फेंक!"

हज्जू भाई ने घड़ी फेंकी, लेकिन नज्जू भाई उसे झेल नहीं पाए और घड़ी ज़मीन पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गई।

"ये क्या किया नालायक!" नज्जू भाई चीखे।

"मैंने क्या किया?" हज्जू भाई मासूमियत से बोले।

नज्जू भाई क्या कहते? गलती तो उनकी ही थी। तिलमिलाकर बोले, "अब रूमाल मत फेंक देना। मैं खुद ऊपर आकर ले लूँगा।"

एक बूँद तोड़ी...

एक बूँद तोड़ी
फूँक मारकर इधर-उधर सरकाई
पानी पर फिर कलम से की तुरपाई
आँख टँकी और पैर टँके तो
क्या-क्या दिया दिखाई...

चित्रकार विदुषी यादव के इस आइडिए पर तुम्हारे सैकड़ों चित्र मिले। पर अफसोस हम वे सब एक साथ नहीं छाप पा रहे हैं। कुछ चुनिन्दा चित्र यहाँ देख सकते हो। और कुछ तुम्हें चकमक के अगले अंकों में देखने को मिलेंगे।

– मणि सागमो, तीसरी,
झाम्ट्से गट्सल स्कूल,
तवांग, अरूणाचल प्रदेश।

– सुहाना, ग्यारह साल,
आशा समूह, दिगन्तर,
जयपुर

– आरूषी राजपूत,
सातवीं डी.पी.एस पुणे

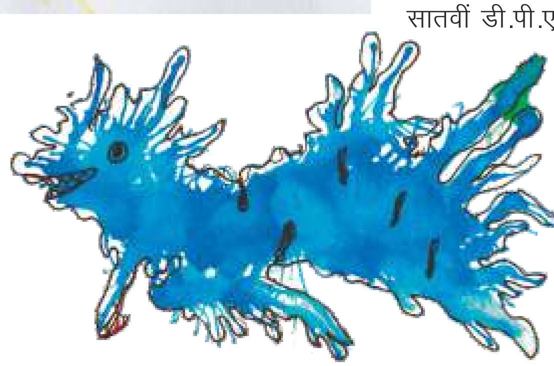

– आर्मिश मसूद, नवीं, डी.पी.एस पटना

- निशा, पाँचवीं, विश्वास स्कूल, गुड़गाँव

– प्रवेश, आठवीं,
किम एजुकेशन सोसाइटी, सूरत

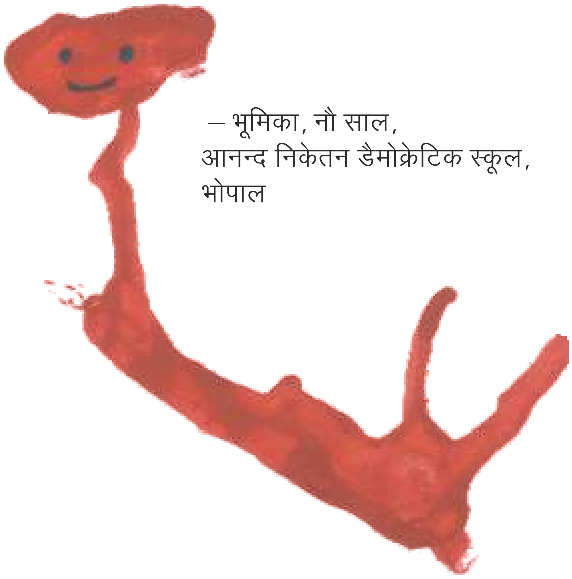

– भूमिका, नौ साल,
आनन्द निकेतन डैमोक्रेटिक स्कूल,
भोपाल

- प्रियांशी धूरिया, नवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

– श्वेता मिश्रा, नवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

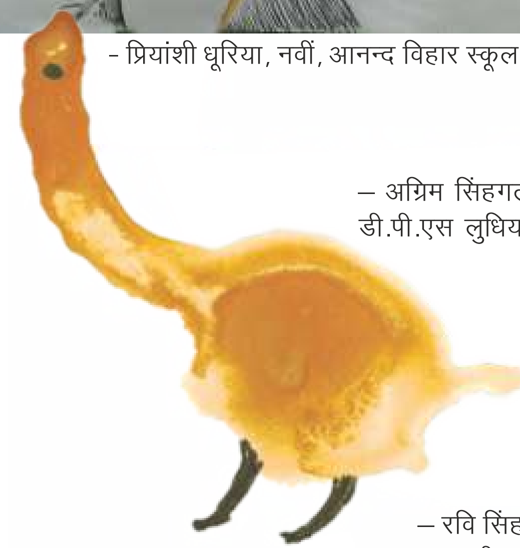

– अग्रिम सिंहगला, चौथी,
डी.पी.एस लुधियाना

– रवि सिंह, आठवीं,
शासकीय माध्यमिक
पी.टी,एस शाला,
पंचमढ़ी (म.प्र)

– दर्शनी के, पाँचवीं, डी.पी.एस कोयम्बतूर

– दिव्यान्श सात साल,
आनन्द निकेतन डमोक्रेटिक स्कूल,
भोपाल

दोस्त
चित्र-कल्पना : शशि · सुलेखन : दिलीप चिंचालकर
दोस्त चुम्बक से होते हैं।
कभी हमें अपनी ओर खींचते हैं।
कभी हमारी ओर खिंचे चले आते हैं।

पर जब ये मिल जाते हैं
तो अलग होना
मुश्किल हो जाता है
और वे कुछ अमिट
छाप छोड़ जाते हैं
और साथ बिताए हर पल को खास बना देते हैं।

Nothing — 0 | Easy — EZ | Date — D8 | Have — HV | Late — L8 | Fate — F8 | How are you? — HRU?

Angry

Bald

Dumbfound

Lots of smiles

bhasha@21century

(purist RIP)

इन्द्राणी रॉय

भाषा के बारे में आमतौर पर सोचा जाता है कि यह एक ऐसी चीज़ है जो सदियों से एक ही तरह से चली आ रही है। असल में बात इससे एकदम उलट है। हर दौर में भाषा बदलती रहती है। जब समाज अलग-अलग दौर से गुज़रता है तो भाषा भी समाज के बदलाव को दर्शाते हुए बदलती रहती है। इसके लिए कभी दूसरी भाषा से शब्द उधार लिए जाते हैं, कभी नए शब्द बनते हैं तो कभी पुराने शब्दों का नया इस्तेमाल होता है।

अब यह ज़माना ठहरा इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग का! तो ज़ाहिर है कि भाषा में सबसे ज़्यादा बदलाव इन्हीं क्षेत्रों में आएँगे। सबसे पहले तो मेरे दिमाग में आता है शब्द **सर्फ**। आजकल इस शब्द का बहुत चलन है। बच्चा-बच्चा वेब-सर्फ करता है। समन्दर की लहरों पर खेले जानेवाले रोमांचक खेल "सर्फिंग" से लिया यह अँग्रेज़ी शब्द **सर्फ** अब हमारी भाषाओं का हिस्सा हो गया है। इसी तरह का एक और शब्द है **माउस**। मैं एक छोटी-सी बच्ची को जानती हूँ जिसने कभी भी असली माउस यानी चूहा नहीं देखा था। उसके लिए माउस सिर्फ कम्प्यूटरवाला माउस था। **सेल** (कोशिका) शब्द से बना शब्द **सेलफोन**, मकड़ी के जाले से प्रेरित **वर्ल्ड वाइड वेब**.... तुम थोड़ी कोशिश करके देखोगे तो ऐसे कई सारे शब्द मिल जाएँगे जिन्हें इंटरनेट के कारण नए अर्थ मिल गए हैं।

h2CUS — Hope to see you soon | B4 — Before | BrB — Be right back | WBU — What about you? | G2G — Got to go

Are	Bye for now	Laughing out loud	All the Best	Do you remember?
R	B4N	LOL	ATB	Dur?

Love <3

Broken heart </3

Very Happy :-)

Before b4

Bored :-*

Shocked :O

Sad :-(

यह तो थी बात शब्दों की। पर इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग के ज़माने में चिन्हों के भी मतलब बदलते गए हैं। **@** चिन्ह पहले तो सिर्फ हिसाब-किताब के लिए इस्तेमाल किया जाता था। तब इसे at the rate of कहा जाता था। फिर आया ई-मेल और @ बन गया at – वेब पर अपना पता बताने का ज़रिया। @yahoo, @google, @gov.in... । कुछ ही सालों के भीतर @ को हमने फिर नए अवतार में पाया। सोशल नेटवर्किंग साइटों में किसी को जवाब देने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाने लगा। @anil का मतलब -- अनिल यह जवाब तुम्हारे लिए।

यानी hash एक और चिन्ह है जिसने भी इस दौर में नया रूप पाया है। पहले तो इसका इस्तेमाल ज़्यादातर उत्तरी अमरीका और कैनाडा में ही देखा जाता था। #44 यानी नम्बर 44। फिर किसी ने सोचा कि ट्विटर जैसी साइटों पर बातचीत के अलग-अलग प्रसंगों को कैसे लेबल किया जाए! इस तरह # को नया नाम hashtag और काम मिला। #KashmirFloods, #Results2014, #WorldCup2014...

स्कूल में अँग्रेज़ी लिखते वक्त बताया जाता है कि अँग्रेज़ी वाक्यों की शुरुआत बड़े अक्षरों से यानी capital letters से होती है। पर ई-मेल में बड़े अक्षरों का इस्तेमाल दर्शाता है कि तुम चिल्ला रहे हो। I didn't get it एक साधारण वाक्य है पर I DIDN'T GET IT कोई गुस्से से चिल्लाकर ही बोलेगा या लिखेगा। * चिन्ह को कभी खासियतें दिखाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। पर आजकल किसी शब्द पर ज़ोर देने के लिए इसका इस्तेमाल होता है। I *will* go there tomorrow यानी मैं ज़रूर जाऊँगी।

देखा, इंटरनेट ने हमारी जानी-पहचानी भाषा को कुछ ही सालों में किस कदर बदल दिया है। जब ज़माना बदल रहा है, ज़माने के साथ-साथ लोग बदल रहे हैं तो फिर लोगों के विचार का माध्यम कैसे स्थिर रह सकता है!

P911	ROFL	*S*
My parents are in the room (911 - emergency)	Rolling on the floor laughing	before

जर्रा जर्रा कजर्रा

रश्मि पालीवाल

जिस समय सीयडोणि शहर में व्यापारियों के सहयोग से मन्दिर बन रहे थे, उसी समय इस क्षेत्र के राजा-महाराजा भी बहुत बड़े और शानदार मन्दिर बनवा रहे थे। सीयडोणि के वे पुराने मन्दिर आज देखने को नहीं मिलते, पर, राजाओं के बनवाए मन्दिरों की बात और थी। (सीयडोणि पर एक विस्तृत लेख फरवरी अंक में देखें)। उनके बहुत से मन्दिर आज भी खड़े हैं। खजुराहो में बने मन्दिर ऐसे मन्दिरों के भव्य उदाहरण हैं जिन्हें विश्व धरोहर होने का दर्जा मिला है।

माना जाता है कि खजुराहो में चन्देल वंश के राजाओं ने 85 मन्दिर बनवाए थे। इनमें से अब केवल 25 ही खड़े दिखाई देते हैं। मन्दिरों के अवशेष 21 वर्ग किलोमीटर लम्बे-चौड़े इलाके में फैले हुए हैं। सन् 900 से 1300 के बीच यहाँ एक बड़े नगर की चहल-पहल रही होगी। चन्देल राजाओं ने इसे अपनी राजधानी भी बनाया था जबकि उनकी एक और राजधानी महोबा में थी। 11वीं शताब्दी में आए यात्री अल बेरूनी और 14वीं शताब्दी में आए यात्री इब्न बतूता अपने ब्यौरों में खजुराहो का ज़िक्र करते हैं। वे इस नगर को *कजुराहा* और *कजर्रा* कहते हैं और बताते हैं कि यहाँ एक मील लम्बे तालाब के किनारे बहुत से मन्दिर हैं, मूर्तियाँ हैं।

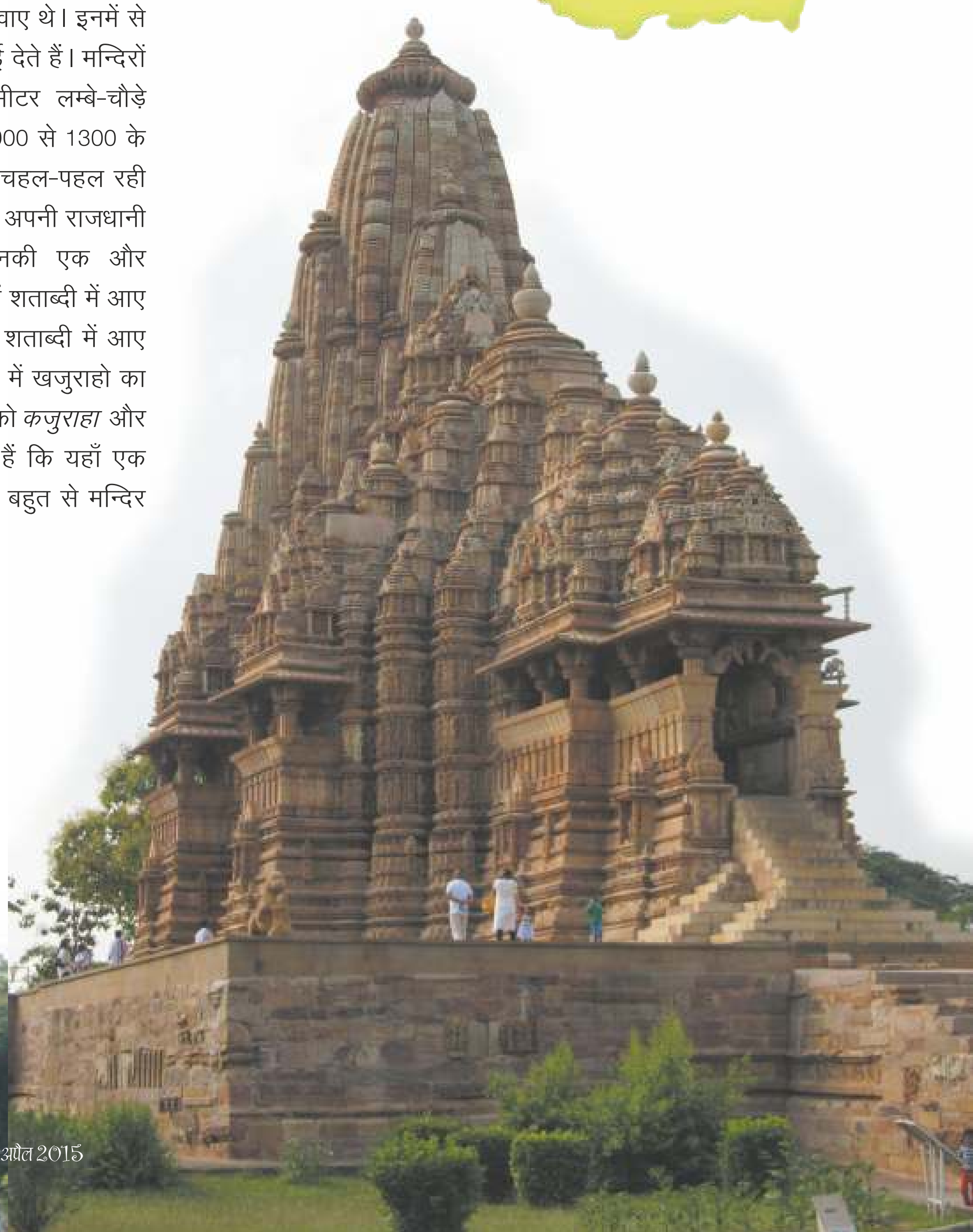

कन्दरिया महादेव मन्दिर

मन्दिर के पत्थरों पर खुदे आलेख भी यह जानकारी देते हैं कि कौन-सा मन्दिर किस राजा ने बनवाया। चन्देल वंश ने अपने आसपास के कई वंशों से लड़-भिड़कर अपनी शक्ति स्थापित की थी। बंगाल के पाल वंश और दकन के राष्ट्रकूट वंश से उनका युद्ध होता रहता था। शुरू में चन्देल राजा प्रतिहार वंश के नीचे उनके सामन्त की तरह राज करते थे पर बाद में उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ा ली और प्रतिहार वंश को अपने स्वामी की तरह मानना बन्द कर दिया। बाद में पूर्वी भारत के कलचूरी वंश के राजाओं ने चन्देलों से कई युद्ध किए। इसी समय मध्य एशिया के गोर वंश के सुलतान भी चन्देलों पर आक्रमण करके अपना राज्य बढ़ाने लगे। गोर वंश के सुलतानों ने एक बड़ा साम्राज्य बनाने में सफलता पाई। चन्देलों की ताकत कम होती गई। खजुराहो की चहल-पहल और शान-शौकत जाती रही। एक से एक सुन्दर मन्दिर बनवाने का जो ज़बरदस्त दौर 300 सालों तक चला था, वो थमने लगा। शायद कुछ मन्दिर अधूरे ही छूट गए। शहरी रौनक न रही हो पर खजुराहो एक छोटे-से गाँव के रूप में तो बना ही रहा।

गाँव के लोग अपनी खेती-किसानी, कारीगरी, धन्धे में जुटे रहे। उनके रोज़ के रीति-रिवाज़ चन्देलों के भव्य मन्दिरों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे और वे पहले की तरह चलते रहे। बड़े-बड़े मन्दिरों में किसानों, कारीगरों की पहुँच-पकड़ वैसे भी कुछ खास नहीं रहती थी। पर चन्देल राज्य के खत्म होते जाने से राजा, सामन्तों, दरबारियों, व्यापारियों की इन मन्दिरों में पूजा-अर्चना खत्म होने लगी। इससे मन्दिरों को मिलनेवाली देख-रेख कम होने लगी। चारों तरफ जंगल बढ़ता गया।

1838 की बात है। एक अँग्रेज़ इंजीनियर एक पालकी में सवार होकर इस इलाके से गुज़र रहा था। वह रेलगाड़ियों और मोटरगाड़ियों से पहले का ज़माना था। उसके पालकीवाले ने ज़िक्र किया कि यहाँ जंगलों के बीच भव्य मन्दिर छुपे हुए हैं। टी. एस. बर्ट नाम का वह इंजीनियर *खजुराओ* नाम की जगह के चमत्कारों को ढूँढने के लिए जंगलों में घुसा और तब से एक बार फिर बाहर के लोगों का ध्यान इन गज़ब की इमारतों व मूर्तियों पर गया। हालाँकि, खजुराहो गाँव के लोगों के ध्यान से ये मन्दिर कभी गायब नहीं हुए थे जैसा कि पालकीवाले की बात से पता लगता है। उस जैसे साधारण लोग ऐसी इमारतों को याद ही तो रख सकते हैं। उनकी देखभाल करना उनके बस की बात नहीं है। फिर भी, लोगों का ऐसी चीज़ों को याद रखना कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। कोई भी सुन्दर, भव्य, अचम्भे में डालनेवाली बात या चीज़ मन पर अमिट छाप छोड़ ही जाती है। अँग्रेज़ी में शायद इसीलिए कहते हैं – *अ थिंग ऑफ ब्यूटी इज़ अ जॉय फॉर ऐवर...* ।

खजुराहो में मन्दिर मिले – कुछ बहुत टूटे और गिरे हुए मिले तो कुछ बेहतर हाल में। उनकी मरम्मत आदि हुई और वे आज के दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बन गए। आज भी पुरातत्व विभाग वहाँ खुदाई कर के नए मन्दिर बाहर ला रहा है।

यह काम 1980 में शुरू हुआ था। विभाग खजुराहो में 18 पुराने टीले पहचान पाया। इनमें से सबसे विशाल टीला था बीजामण्डल का। यहाँ 1999 में खुदाई शुरू हुई और अभी भी चल रही है।

बीजामण्डल टीला

बीजामण्डल मन्दिर

यहाँ एक अधूरा मन्दिर था जो किसी हाल में छूट गया था। ऊँचा चबूतरा बन गया था और उस पर शिवलिंग की स्थापना हो गई थी। बाहर की दीवारें उठाई जा रही थीं कि किसी कारण से काम रोक दिया गया। समय बीता। उसकी शिलाएँ ढह गईं। उसके चबूतरे के चारों ओर बिखर गईं। हवा आँधी से मिट्‌टी जमा होने लगी। बरसात में उस पर घास उगने लगी। पौधे बढ़ चले। लगभग

मिट्टी से निकला चबूतरा

मिट्टी से निकली शिलाओं की लाइनें

800 साल तक मिट्टी, पानी, पौधे अपना काम करते रहे। चबूतरा और यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी पत्थर की शिलाएँ मिट्टी और झाड़ियों से ढँक गईं। ऊँचाई तो पहले से बने चबूतरे और पत्थरों के ढेर से हो ही रही थी – उसके बीच-बीच में मिट्टी भरती गई। यह ऊँची जगह मिट्टी के नीचे हो गई। और एक टीले जैसी दिखने लगी।

1999 में जब बीजामण्डल टीले पर खुदाई का काम शुरू हुआ तो पुरातत्व विभाग ने ध्यान से मिट्टी हटानी शुरू की। चबूतरे की जो शिलाएँ बाहर दिखने लगतीं उनको हरी चादर से ढँका। कई हिस्से साफ कर के सुरक्षित कर दिए गए। और अब हम उनकी सुन्दर नक्काशी देख सकते हैं। टीले के एकदम ऊपर शिवलिंग भी उजागर हो गया है। जो शिलाएँ बिखरी

टीले के ऊपर शिवलिंग

हुई अलग-अलग जगह गिरी मिलती गईं उन्हें टीले से थोड़ी दूर ले जाकर साफ किया और उन पर नम्बर डाला गया। एक जैसी दिखनेवाली शिलाओं को एक लाइन बनाकर रखा जाने लगा। अलग-अलग आकार और डिज़ाइनवाली सैकड़ों शिलाएँ अपनी-अपनी लाइन में जमा करके रखी हुई हैं। इन्हें देखकर लगता है जैसे हम स्पेयर पार्ट्स की दुकान में आ गए हों। मन्दिर बनवाने का काम देखनेवाले प्रबन्धक शायद कारीगरों या ठेकेदारों को ऑर्डर दे देते होंगे कि इस साइज़ और डिज़ाइन के इतने नग या खण्ड (पीस) चाहिए। देखकर लग रहा था जैसे सभी खण्ड प्राप्त होने के बाद यहाँ जमा किए जाते थे कि ज्यों-ज्यों दीवार उठती जाएगी सही जगह पर सही पीस लगते जाएँगे। मानो मन्दिर बनाने का सिलसिला उलटी तरफ से (रिवर्स) दिख रहा हो।

नक्काशी में दर्शाया राज दरबार

पुरातत्व विभाग के औज़ार

क्लैंप लगी शिलाएँ

सभी फोटोः सी एन सुब्रह्मण्यम

बीजामण्डल का यह मन्दिर खजुराहो का सबसे विशाल मन्दिर हो सकता है। यह कन्दरिया महादेव मन्दिर से 4 मीटर ज़्यादा लम्बा है। सीयडोणि के मन्दिरों की तरह यह भी गुम हो गया होता। पर पर्यटन के लिए महत्वपूर्ण इस जगह पर काफी धन खर्च कर के खुदाई का काम उठाया गया है। इसीलिए यह हमारी आँखों के सामने प्रकट होता जा रहा है।

भव्य दीवारें व चबूतरे ही नहीं, इस तरह कैसी-कैसी छोटी पर ज़रूरी चीज़ें भी प्रकट हो जाती हैं...! यहाँ 800-900 साल पहले के किसी लोहार के हाथों की मेहनत, ज्ञान और सूझबूझ का नमूना दिख रहा है। शिलाओं को एक-दूसरे से कसकर बाँधे रखनेवाला यह लोहे का कुन्दा (क्लैंप) है जिसकी मदद से किसी मिस्त्री ने एक भव्य इमारत की कल्पना को थोड़ा और ठोस बना दिया था। 900 सालों की धूल मिट्टी की परतों के नीचे एक-एक हाथ की मेहनत सुरक्षित है।

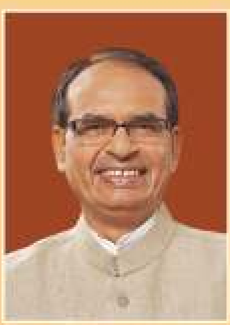

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

अंतर सिंह आर्य
मंत्री, श्रम विभाग

शहरी निर्माण मजदूरों के लिये नयी पहल

- अपने घर बनाने, बैंक से ₹ 7.50 लाख तक का ऋण लेने पर म.प्र. भवन एवं अन्य संनिर्माण कर्मकार कल्याण मंडल से मिलेगा 1 लाख रुपये का अनुदान।
- लाभ लेने के लिये होना चाहिए 5 सालों से वैध परिचय पत्र।
- पंजीकृत शहरी निर्माण मजदूर, योजना का लाभ लेने के लिये अपने जिले के श्रम कार्यालय से प्रपत्र की प्रति प्राप्त करें, तथा प्रपत्र भरकर श्रम कार्यालय में जमा करें।

सिर पर छत अब नहीं सपना

दिनांक - 13-3-2015 D76790

गानेवाला पेड़

एक अखरोट का पेड़ था। वह पेड़ जादू का पेड़ था। वह रोज़ गाना गाता था, “अ र र र र र र र...।” सब उसका गानाा मज़े से सुनते थे। एक दिन वहाँ एक बुरा आदमी आया। वह पेड़ से बोला, “अरे पेड़! तुम इतना शोर मत मचाओ। तुम्हारे शोर से सारी दुनिया परेशान हो गई है।” अखरोट के पेड़ को यह बात बुरी लगती है। वह रोज़ के लिए चुप हो जाता है। जब लोगों को अखरोट के पेड़ का गाना नहीं सुनाई देता तो वे उसके पास जाते हैं और गाना सुनाने के लिए कहते हैं। पर वह पेड़ चुप ही रहता है। जब हवा चलती है तब उसकी पत्तियाँ गाना गाती हैं, “अ र र र र र...।” लेकिन बहुत ही धीरे-धीरे। अब जिसको भी अखरोट की पत्तियों का गाना सुनना होता है वह उस पेड़ के नीचे चला जाता है। क्या तुमने कभी किसी पेड़ का गाना सुना है?

– सिमरन, चौथी,
रा. प्रा. वि. गणेशपुर, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

मेरी आज़ादी

असीम गगन है मेरे चारों ओर
नीचे सागर में नीले-सफेद सी हिलोर
छोटे-छोटे वृक्ष चींटियों समान
जिनकी छाँव में बच्चे करते हैं शोर
सूर्य सिन्दूर-सा लाल
सिन्धु के पीछे डूब रहा है
करने को सवेरे का इन्तज़ार
चल रही है ठण्डी-ठण्डी वात.....
तारे चमक रहे हैं
गहने जैसे
हो गई है रात
अन्धकार पूरे आकाश पर लपटा हुआ है
चादर-सा
जिसके नीचे से चाँद झाँक रहा है
सोते हुए लोगों पर मुस्कराता हुआ
मैं अपने पंख फैलाकर
नीड़ की ओर उड़ जाता हूँ
मैं एक आज़ाद पंछी हूँ
और मैं आज़ाद ही रहना चाहता हूँ

– जोएना, आठवीं,
शिक्षान्तर स्कूल, गुड़गाँव, हरियाणा

– मेहा शर्मा पाठक, चौथी, जयपुर

जंगल की एक घटना

अमित कुमार

कान्हा हमारे देश के उन गिने-चुने राष्ट्रीय उद्यानों में से एक है जिनमें बाघों के संरक्षण का कार्यक्रम चल रहा है। यहाँ रोज़ सैलानियों को बाघ दिखाने के लिए भी ले जाया जाता है। सुबह के चार-पाँच बजे महावत अपने-अपने हाथियों के साथ बाघ की खोज में अलग-अलग दिशाओं में निकल पड़ते हैं। जैसे ही किसी महावत को बाघ दिख जाता है तो वह बाकी महावतों को वॉकी-टॉकी से यह सूचना दे देता है। एक हाथी पर आमतौर पर छह लोग बैठते हैं। बाघ से लगभग दस मीटर की दूरी बनाकर रखी जाती है। यह शो आमतौर पर सुबह दस बजे तक चलता रहता है।

कृति अपने पिता के साथ बाघ देखने के लिए यहाँ आई थी। उस दिन कृति के मम्मी-पापा के साथ एक गाइड और दो अन्य सैलानी भी थे। दो सैलानियों में से एक उम्रदराज़ व्यक्ति थे। वे गुजरात से आए थे। वहाँ कपड़ों का कारोबार था उनका। और दूसरा सैलानी एक नवयुवक था जो उनका मैनेजर था। हाथी पर बैठने के बाद कृति काफी रोमांचित थी। वह पहली बार खुले जंगल में बाघों को घूमते देखनेवाली थी। इतने में महावत को दूर बाघ दिखे। उसे दिखते ही महावत ने हाथी को थमने का इशारा किया।

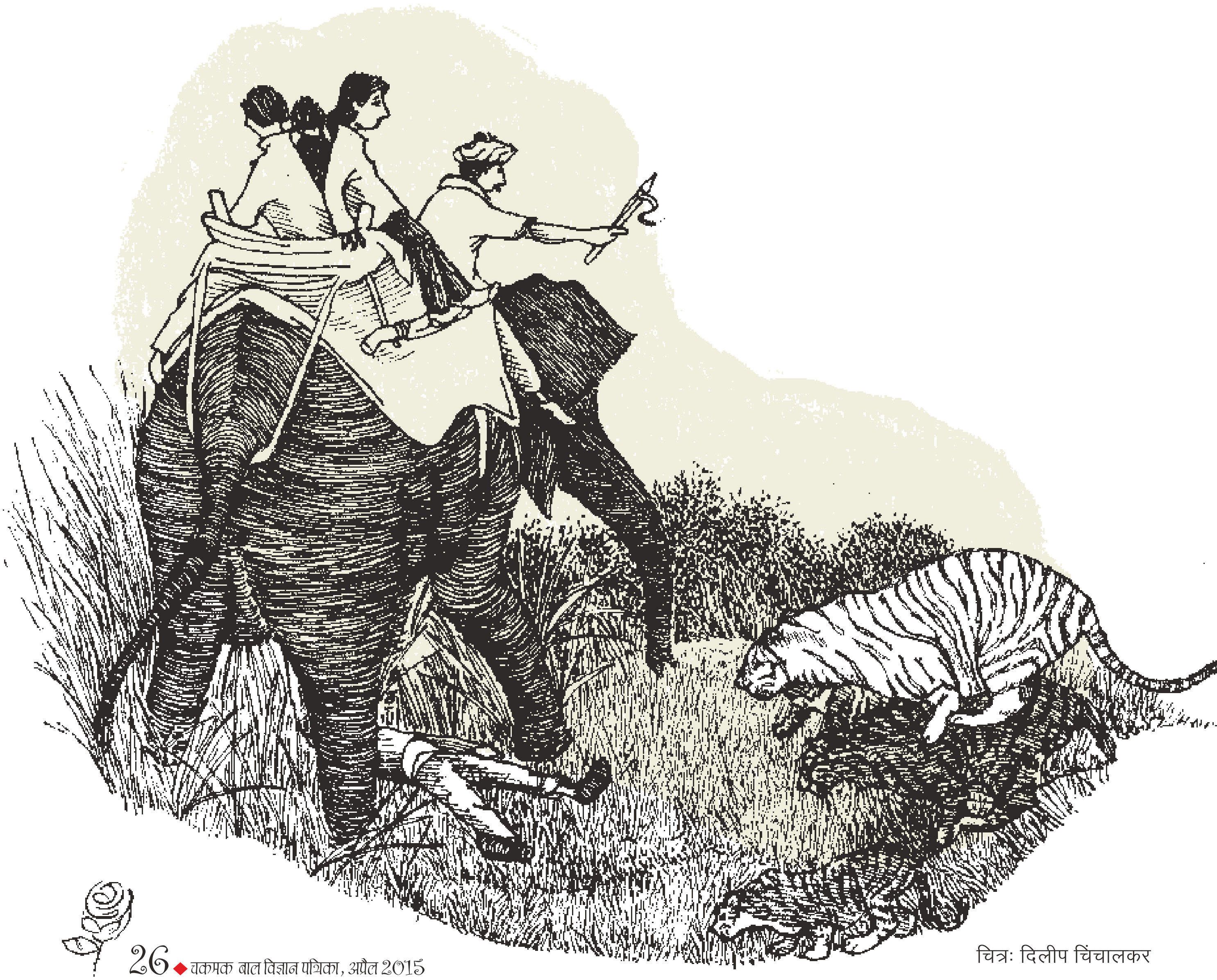

चित्रः दिलीप चिंचालकर

गुगली

राजेन्द्र धोड़पकर

और सबको चुप रहने का संकेत दिया। महावत ने उँगली से इशारा किया – खुले मैदान में तीन बाघ आराम फरमा रहे थे। खुशी और रोमांच से कृति की हलकी-सी चीख निकल गई। तीन बाघ – एक माँ और उसके दो शावक। शावकों की उम्र लगभग सवा साल थी। लग रहा था जैसे वे हाँफ रहे हों। कृति ने दूर तक पूरे आसपास पर नज़र दौड़ाई। घास का खुला मैदान और इक्का-दुक्का पेड़ थे। जंगल का शान्त-सा शोर। दो हाथियों पर बैठे सैलानी और सामने लेटे हुए तीन बाघ। यह दृश्य इतना आकर्षक और रोमांचित करनेवाला था कि कृति जैसे उसमें खो गई।

किसी के बड़बड़ाने से अचानक उसका ध्यान टूटा। उसके साथ बैठे बुज़ुर्ग महावत पर चिल्ला रहे थे, "तुम लोग ठगते हो। कहा था जंगल में घूमता हुआ बाघ दिखाया जाएगा। पर यहाँ बेहोशी का इंजेक्शन लगाकर सोए हुए बाघों को दिखा रहे हो।"

गाइड जो 18-19 साल का नवयुवक था, को उस व्यक्ति की बात नागवार गुज़री। उसने महावत को इशारा किया और महावत ने हाथी को। और हाथी ने पैरों से मिट्टी खुरची और सूँड़ में बटोरकर बाघिन पर उछाल दी। बाघिन बिजली की फुर्ती से उठी और दहाड़ उठी। दहाड़ने के साथ ही वह हाथी पर झपटी। दहाड़ इतनी बुलन्द थी कि हम तो हम महावत तक काँप गया था। शायद हाथी भी अन्दर से काँप गया हो, क्या पता! बुज़ुर्ग जिन्होंने अभी-अभी बेहोशी के इंजेक्शन लगाकर बाघों को दिखानेवाली बात कही थी, हौदे पर लापरवाही से बैठे थे। बाघिन की दहाड़ से वे काँपकर नीचे गिर गए। कुछ डर और शायद कुछ चोट का असर था कि गिरते ही वे बेहोश हो गए।

यह सब इतना जल्दी हुआ था कि कोई कुछ समझ ही नहीं पाया। पर हाथी ने मौके की नज़ाकत और गम्भीरता को समझा और तुरन्त ही उस व्यक्ति को अपनी दोनों टाँगों के बीच ले लिया। दूसरा हाथी जो सैलानियों को लेकर लौटने के लिए मुड़ा ही था, महावत के इशारे पर मुड़कर दूसरे हाथी की मदद के लिए खड़ा हो गया। बाघिन गुस्से में थी। वह उस आदमी पर हमले की फिराक में थी। वह बार-बार आक्रमण करने की मुद्रा बनाते हुए हाथी पर झपटती। हाथी थोड़ा

सिहर जाता पर वह उस व्यक्ति के बचाव के लिए टस से मस न हुआ। वह अपनी सूँड़ से बाघिन को दूर रखने की भरसक कोशिश कर रहा था। स्थिति तब और भी भयावह हो गई जब बाघिन के दोनों शावक भी बाघिन के साथ आ खड़े हुए। बाघ के शावक सवा साल में अच्छी-खासी कद-काठी और ताकत पा लेते हैं। उन शावकों के आ जाने से दोनों हाथियों के लिए मोर्चा सम्भालना मुश्किल हो गया था। दूसरे हाथी के महावत ने अपने हाथी को दोनों शावकों को खदेड़ने के लिए ललकारा तो बाघिन बीच में आ गई। बच्चे अब उस आदमी पर आक्रमण की कोशिश करने लगे थे। इस बीच बाघिन ने एक बार फिर ज़ोरदार दहाड़ लगाई। पूरा जंगल जैसे काँप गया। हाथियों का साहस भी पस्त होने लगा। दोनों हाथियों पर बैठे लोगों के साथ-साथ उनके महावतों की साँसें भी डर और किसी अनहोनी की आशंका में अटकी हुई थीं। कृति को बहुत डर लगने लगा था। अपने डर को भगाने के लिए वो बार-बार पीछे की ओर देखती या आँख बन्द कर लेती। इस बार जब उसने पीछे देखा तो एक बड़े हाथी को अपनी ओर दौड़ता पाया। उस पर केवल महावत था। उसके पीछे दो और हाथी आते दिखे। कृति का भी थोड़ा हौसला बढ़ा। बड़े हाथी के चिंघाड़ते हुए करीब आने से मोर्चा सम्भाल रहे हाथियों का भी हौसला बढ़ गया। बड़ा हाथी सूँड़ उठाकर चिंघाड़ते हुए बाघिन की ओर लपका। बाघिन जो अभी भी गुस्से में थी ने पंजे से हाथी की ओर वार करते हुए अपनी नीयत स्पष्ट कर दी थी। पर हाथी अपनी हैसियत अच्छे से जानता था। उसने सूँड़ से बाघिन पर वार किया। बाघिन छिटककर कुछ दूर जा गिरी। यह झटका उसके मनोबल को तोड़ने के लिए काफी था। फिर स्थिर होकर हाथी की ओर देखते हुए गुर्राने लगी। हाथी फिर उसकी ओर लपका तो वह भाग खड़ी हुई। उसके भागते ही दोनों शावक भी उसकी ओर दौड़ पड़े। उनके जाते ही सबकी जान में जान आई। तुरन्त ही महावतों ने हाथियों को इशारा किया तो वे उस व्यक्ति के चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो गए। एक व्यक्ति हाथी से नीचे उतरकर वहाँ गिरे व्यक्ति को हाथी पर चढ़ाने की कोशिश में लग गया। गाइड और महावत बेहद दुखी और शर्मिन्दा थे। उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी कि बाघिन पर मिट्टी फिकवाने से इतनी गम्भीर स्थिति पैदा हो जाएगी। उस व्यक्ति को प्राथमिक उपचार के बाद छुट्टी दे दी गई। उसके कन्धे पर मामूली चोट आई थी। कान्हा राष्ट्रीय उद्यान की यह घटना उन सैलानियों को ताउम्र याद रहेगी। कृति भी यह घटना नहीं भूली। तभी तो उस घटना के दस साल बाद उससे सुना यह किस्सा उसकी सहेली का भाई लिख रहा है। (जिसे तुमने अभी-अभी पढ़कर खत्म किया है।)

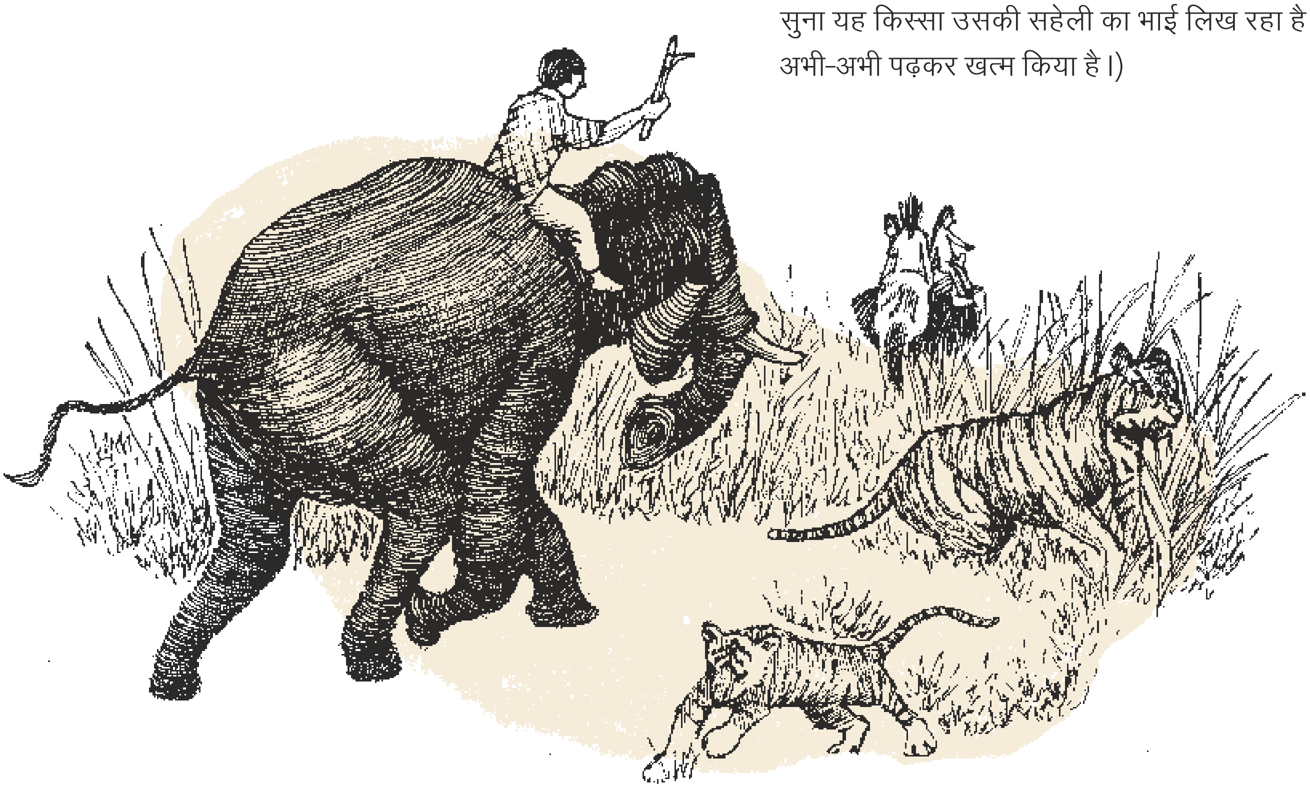

क्लॉड मोने और बुलेवार दस कैपुसिना

कवर पर प्रकाशित चित्र पर दो टिप्पणियाँ...

यह चित्र दृश्यांकन के अन्तर्गत आता है। जो ओपेक (ऑयल) कलर से बनाया गया है। कलाकार का मुख्य विषय प्रकृति और मौसम है। जिसमें धरती व आकाश दोनों ही को स्नो फॉल (बर्फबारी) से सराबोर दिखाया गया है। सड़क किनारे के भवन को वृक्षों को खड़ा करके छिपाया गया है। ताकि कैनवास पर प्रकृति को और मौसम को अधिक से अधिक जगह दी जा सके। इसमें जो मनुष्य आकृतियाँ हैं वो ऐसे मौसम में बहुत ही निरीह और गौण विषय की तरह हैं। यह चित्र इम्प्रैशनिज़्म शैली का अच्छा उदाहरण है।

– देवीलाल पाटीदार (सिरैमिस्ट)

◆ ◆ ◆

पूरा का पूरा मौसम है ये पेंटिंग। सामने खड़े हों तो सर्द हवा छूने लगेगी, पाँव बर्फ में धँसते से लगेंगे। चित्र की सुबह में खूब लोग इकट्ठा हैं! कोई उत्सव है शायद! लोग दृश्य में गुज़र नहीं रहे हैं, न जल्दी में हैं। वो बस जमा हैं, साथ हैं। यह चित्र देखनेवाले को निष्क्रिय नहीं रहने देता – खुद में कहीं शामिल कर लेता है!

आकाश और धरती के बीच खड़े लम्बे पेड़, दृश्य में गहराई से पहले ऊँचाई पर ध्यान खींच ले जाते हैं। जैसे पेड़ के सहारे नज़र आकाश पर जाती है और धरती उसे अपनी ओर खींच लेती है!

रंग इस चित्र को तीन टुकड़ों में बाँटते हैं। आसमान हलका नीला और धरती रूई-सी सफेद, बीच में जैसे हरियल नीले रंग की थेगली लगी हो। दूर अनन्त के भी आगे तक जाते हैं दो रंग – हलकी और गहरी दोनों तानों में नीला और सफेद। नीचे ज़मीन पर रेशा-रेशा सफेद रंग बिखरा है और काले धब्बों से कुछ सिमटे, कुछ छितरे लोग। रंग के गाढ़े धब्बों की भीड़, चित्र की ज़मीन को आकाश की तुलना में भारी कर देती है। आकाश और भी हलका साफ हो जाता है और ज़मीन स्थायित्व देती भारी। ऐसे में रंग चित्र भूमि को सन्तुलित करते हैं। आकाश में आज़ाद बहती हवा ज़मीन के नज़दीक आती थमती जाती है – ज़मीन की ओर घनत्व है।

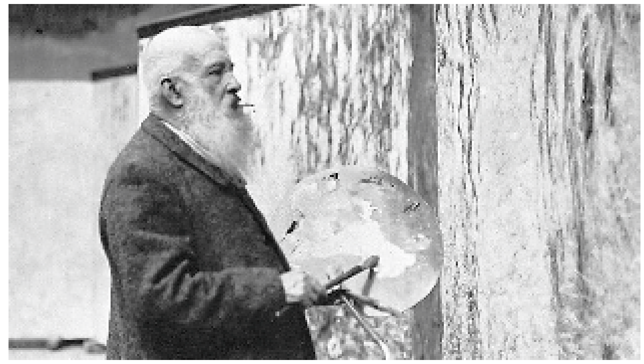

मोने आकार की तफसील देने की बजाय रंग की तफसील पर, रोशनी से बदलती रंग की हर रंगत पर ध्यान देते थे। जैसे आकृति बस रंग ही की बनी हो। रंग-रंग जोड़कर पूरी दुनिया बनी हो, मोने की दुनिया! उनकी यह शैली इस चित्र में खूब दिखती है – रंग के छोटे-छोटे पनीले ब्रुश स्ट्रोक से धुँधली रंगी आकृतियाँ। चित्र भूमि पर सब कुछ हर कुछ में विलीन होता हो जैसे!

मोने एक दृश्य को कई-कई बार बनाते थे। उसे हर मौसम में रंगते थे, अलग-अलग समय में रंगते थे ताकि सूरज की रोशनी की हर झलक को, हर रंग को, हरेक असर को पकड़ पाएँ। यही इम्प्रैशनिज़्म का मर्म था। मोने इस कला आन्दोलन के प्रवक्ता थे जिसमें चित्रकार स्टूडियो के कृत्रिम उजाले से निकल प्रकृति की रोशनी में रंग रहा था।

ये दृश्य शायद न खूब ऊँचाई से देखा गया है, न ज़मीन पर खड़े होकर बनाया गया है। जाने कैसे इसे बस उतनी ही ऊँचाई से देखा गया है कि पेड़ों की बर्फ से लदी शाखाएँ एकदम सामने आ गई हैं। शायद मोने किसी खिड़की से देख इसे पेंट कर रहे होंगे। खिड़की जो ठीक पेड़ों की ऊँचाई पर, दृश्य की दाईं तरफ है।

यूँ तो यह चित्र सर्द है, जो रूखा हो सकता था! लेकिन ठण्डक में सुर्ख लाल फूलों के एक खुश गुच्छे ने बड़े मौके पे खिलकर पूरे माहौल में उमंग भर दी। यह चित्र शायद शरद के बाद बसन्त के आगमन का उत्सव है।

- निधि सक्सेना (चित्रकार, फिल्मकार)

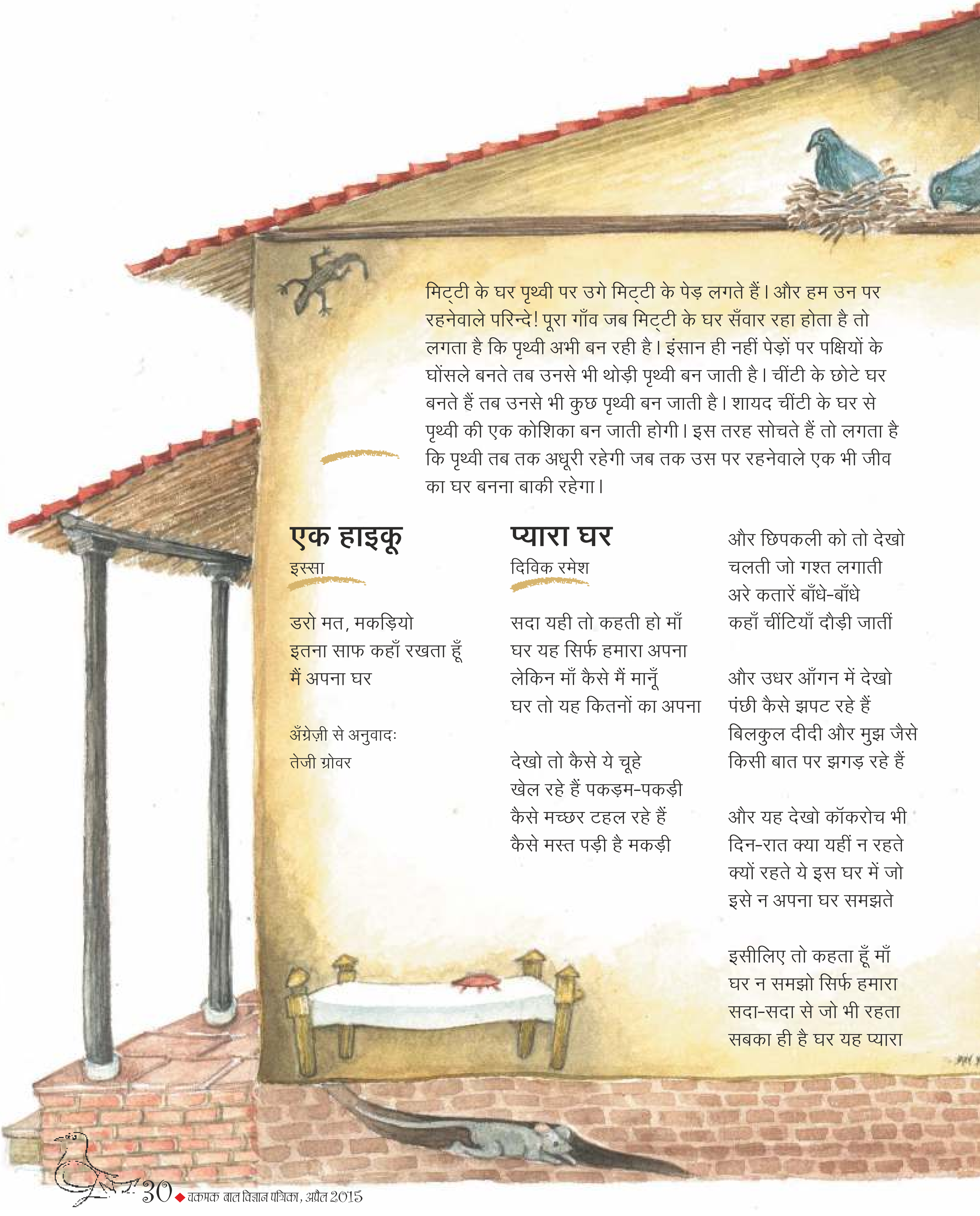

मिट्टी के घर पृथ्वी पर उगे मिट्टी के पेड़ लगते हैं। और हम उन पर रहनेवाले परिन्दे! पूरा गाँव जब मिट्टी के घर सँवार रहा होता है तो लगता है कि पृथ्वी अभी बन रही है। इंसान ही नहीं पेड़ों पर पक्षियों के घोंसले बनते तब उनसे भी थोड़ी पृथ्वी बन जाती है। चींटी के छोटे घर बनते हैं तब उनसे भी कुछ पृथ्वी बन जाती है। शायद चींटी के घर से पृथ्वी की एक कोशिका बन जाती होगी। इस तरह सोचते हैं तो लगता है कि पृथ्वी तब तक अधूरी रहेगी जब तक उस पर रहनेवाले एक भी जीव का घर बनना बाकी रहेगा।

एक हाइकू

इस्सा

डरो मत, मकड़ियो
इतना साफ कहाँ रखता हूँ
मैं अपना घर

अँग्रेज़ी से अनुवादः
तेजी ग्रोवर

प्यारा घर

दिविक रमेश

सदा यही तो कहती हो माँ
घर यह सिर्फ हमारा अपना
लेकिन माँ कैसे मैं मानूँ
घर तो यह कितनों का अपना

देखो तो कैसे ये चूहे
खेल रहे हैं पकड़म-पकड़ी
कैसे मच्छर टहल रहे हैं
कैसे मस्त पड़ी है मकड़ी

और छिपकली को तो देखो
चलती जो गश्त लगाती
अरे कतारें बाँधे-बाँधे
कहाँ चींटियाँ दौड़ी जातीं

और उधर आँगन में देखो
पंछी कैसे झपट रहे हैं
बिलकुल दीदी और मुझ जैसे
किसी बात पर झगड़ रहे हैं

और यह देखो कॉकरोच भी
दिन-रात क्या यहीं न रहते
क्यों रहते ये इस घर में जो
इसे न अपना घर समझते

इसीलिए तो कहता हूँ माँ
घर न समझो सिर्फ हमारा
सदा-सदा से जो भी रहता
सबका ही है घर यह प्यारा

मैं मोर जमीन ला बचावत हूँ...

(पेज 7 का शेष भाग)

बड़ा-सा फावड़ा लगा होता है। वो ज़मीन खोदता है और कोयला निकालता है।"

"ये कम्पनीवाले बड़े कमीने हैं। रात को आ खोद जाते हैं। सुबह उठते हैं तो ज़मीन गायब...।"

मति के डर और चिन्ताएँ बढ़ गई थीं। कित्ती मुश्किल से तो उसने अपना खेत पाया था। और अभी तक तो उसे बस इसी का डर था कि कहीं उसके पिता उसे ससुर-बाड़ी न भेज दें। और लो, अब तो यह नई मुसीबत आ गई है। नई और पहलेवाली से कहीं बड़ी। ये कम्पनीवाले तो सभी के खेत हड़पने को आमादा हैं।

अगली सुबह तड़के ही वो अपने गाँव की ओर चल दिए। उसने अपने नए दोस्तों से विदा ली। और उनसे वादा लिया कि अगली बार जब इस गाँव के लोग उसके गाँव आएँगे तो वे भी साथ आएँगे। रास्ते भर वो चुप रही। इतनी सारी हलचलों और चिन्ताओं ने उसे थका दिया था।

उस दिन किसी ने कोई खास काम नहीं किया। दादी ने कुछ सीधा-सादा-सा खाना बनाया और अपनी थकान मिटाने के लिए सो गईं। शाम को मति अपना खेत देखने गई। एक दिन वहाँ कुछ काम नहीं हुआ था। पर फिर भी खेत ठीक-ठाक ही था। आश्वस्त हो वो खेलने चली गई। आज उसके पास दोस्तों को सुनाने के लिए बहुत कुछ था।

रात को दादी पड़ोसियों के घर गईं। लौटीं तो मति कहीं नहीं दिखी। "नौनी कहाँ गई?" दादी ने पिता से पूछा। "अभी तो यहीं थी।" उन्होंने यहाँ-वहाँ आँखें दौड़ाते हुए कहा। जब वो कहीं न मिली तो वे उसे ढूँढने बाहर निकले। पिता आगे की ओर से बाहर निकले और दादी घर के पीछे की ओर से।

ढूँढते-ढूँढते जब दादी खेत के पास पहुँची तो टॉर्च की रोशनी में उन्हें मति दिखी। फावड़े को पकड़े हुए वो अपने खेत में सोई हुई थी। ठण्ड में सिकुड़ी हुई। "यहाँ क्या कबर सुतत है नौनी! तोला सब जहान खोजत हैं।" दादी की घबराई-सी आवाज़ प्यार से भीगी हुई थी।

"मैं मोर जमीन ला बचावत हूँ।" मति बुदबुदाई।

दादी ने उसे कसकर सीने से लगाया और घर ले आईं। धीरे-से उसे चटाई पर लिटाकर कम्बल ओढ़ाया और खुद भी पास ही लेट गईं।

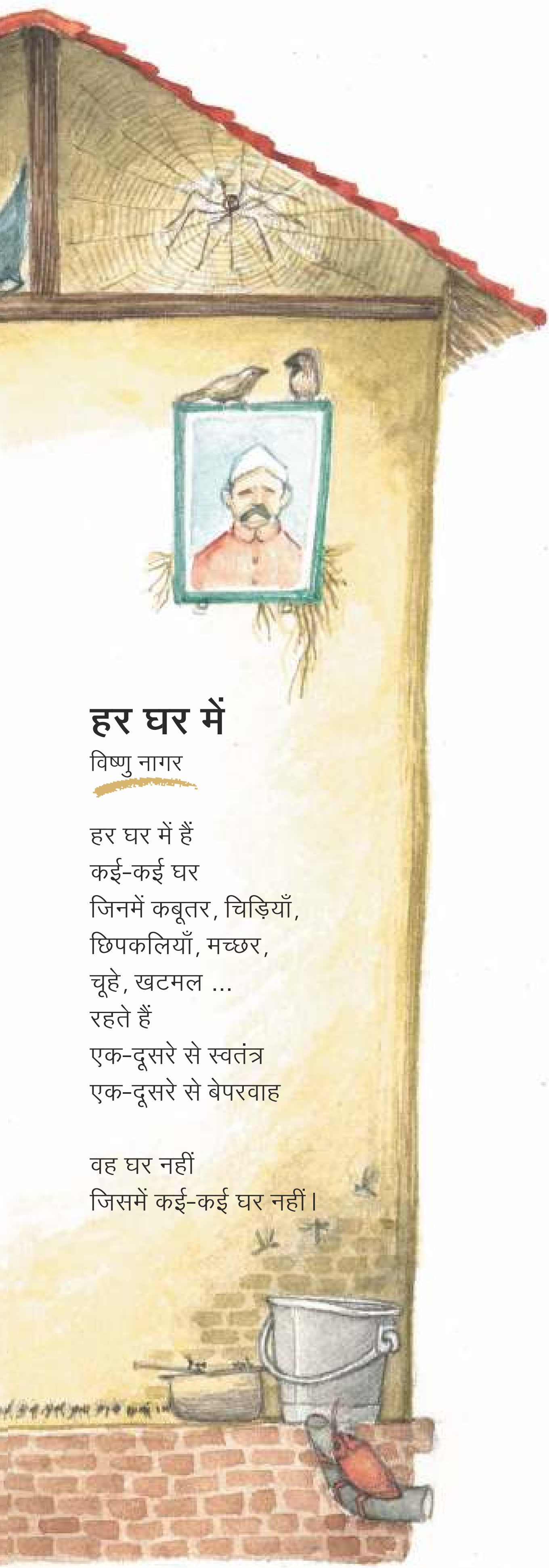

हर घर में

विष्णु नागर

हर घर में हैं
कई-कई घर
जिनमें कबूतर, चिड़ियाँ,
छिपकलियाँ, मच्छर,
चूहे, खटमल ...
रहते हैं
एक-दूसरे से स्वतंत्र
एक-दूसरे से बेपरवाह

वह घर नहीं
जिसमें कई-कई घर नहीं।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

मेरा पन्ना

चूहा

टन-टन करता आता चूहा
बिल्ली से डर जाता चूहा
मक्खन-रोटी खाता चूहा
सरपट दौड़ लगाता चूहा
उछल-कूद करता है चूहा
ठुमक-ठुमककर नाच दिखाता
हम सबके मन को वह भाता
टन-टन करता आता चूहा

– प्रस्तुतिः लक्की, झूमर समूह, दिगन्तर, जयपुर, राजस्थान

हिरण व भालू

एक दिन तालाब पर एक हिरण पानी पीने गया। तभी वहाँ एक भालू आ गया। भालू के आने से हिरण डरकर भागने लगा। भालू ने उसे पकड़ने की बहुत कोशिश की। वह जंगल की तरफ भागता ही गया। उसे रास्ते में लोमड़ी मिली। लोमड़ी ने पूछा, "हिरण तुम क्यों भाग रहे हो?"

हिरण ने लोमड़ी को सारी बात बताई। लोमड़ी भालू को मज़ा चखाने के लिए हिरण को तालाब के पास लेकर गई। वहाँ जाकर पेड़ के पीछे छिपकर दोनों तरह-तरह की आवाज़ें निकालने लगे।

इससे भालू डर गया व वहाँ से भाग गया। हिरण ने लोमड़ी को अपनी जान बचाने के लिए धन्यवाद दिया एवं जंगल की ओर लौट गया।

– आबिदा व अफजल, मयूर समूह, दिगन्तर, जयपुर, राजस्थान

– वीरकेश, 7 वर्ष, मुस्कान संस्था भोपाल, म. प्र.

1 चार दुकान

चत्वारी नाम के एक व्यापारी ने एक खिलौने की दुकान खोली। उसे अंकों से खेलने में काफी दिलचस्पी थी। इसलिए उसने अपनी दुकान का नाम रखा "चत्वारी की चार दुकान"। विभिन्न मौकों पर खिलौनों पर 0 से 10 प्रतिशत तक छूट देनी होती थी और चत्वारी चाहता था कि वो सारे अंक 4 बार 4 लिखकर ही बताए। इसमें जोड़, घटा, गुणा, भाग के चिन्हों का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे 44 प्रतिशत छूट को वह लिख सकता है – (44-4)/4 प्रतिशत की छूट सिर्फ आज के लिए। क्या तुम 1 से 10 तक सभी अंकों तो 4 बार 4 का इस्तेमाल करके चत्वारी की मदद कर सकते हो?

2

• शब्दों के कुछ जोड़े ऐसे हैं जिसके दोनों शब्दों को अलग-अलग करके देखें तो उनका कोई मलतब नहीं होता लेकिन इन शब्दों की जोड़ियाँ सार्थक होती हैं जैसे **उबड़-खाबड़, उथल-पुथल, तितर-बितर** क्या तुम शब्दों के दस और ऐसे ही जोड़े खोज सकते हो?

3

• क्या तुम अपने आसपास पाए जानेवाले ऐसे 5 पक्षियों के नाम बता सकते हों जिन्होंने इस मौसम में अण्डे दिए हों?

4

• तराजू के एक पलड़े में पानी से भरा गिलास और एक पत्थर रखो। दूसरे पलड़े में बाट रखकर तराजू को सन्तुलित कर लो। अब पत्थर को गिलास में डाल दो। ऐसा करने से तराजू के सन्तुलन पर क्या असर होगा और क्यों?

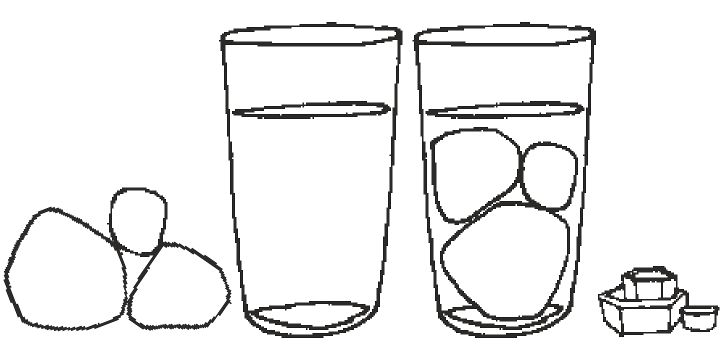

मार्च की चित्र पहेली हल

पि	च	का	री		द	रा	ज	
	र		छ	त	री		ल	
खो	खा			र		बो	त	ल
ख		चा	त	क			रं	
ल	की	र		श	क्ल		ग	ला
		पा	सा			प		ल
च	टा	ई		द	वा	त		टे
क्क			ब	स		वा	ह	न
र	स	गु	ल्ला		के	र	ल	

दरोज़ – माटी में रची-बसी ज़िन्दगी

दिपाली दरोज़

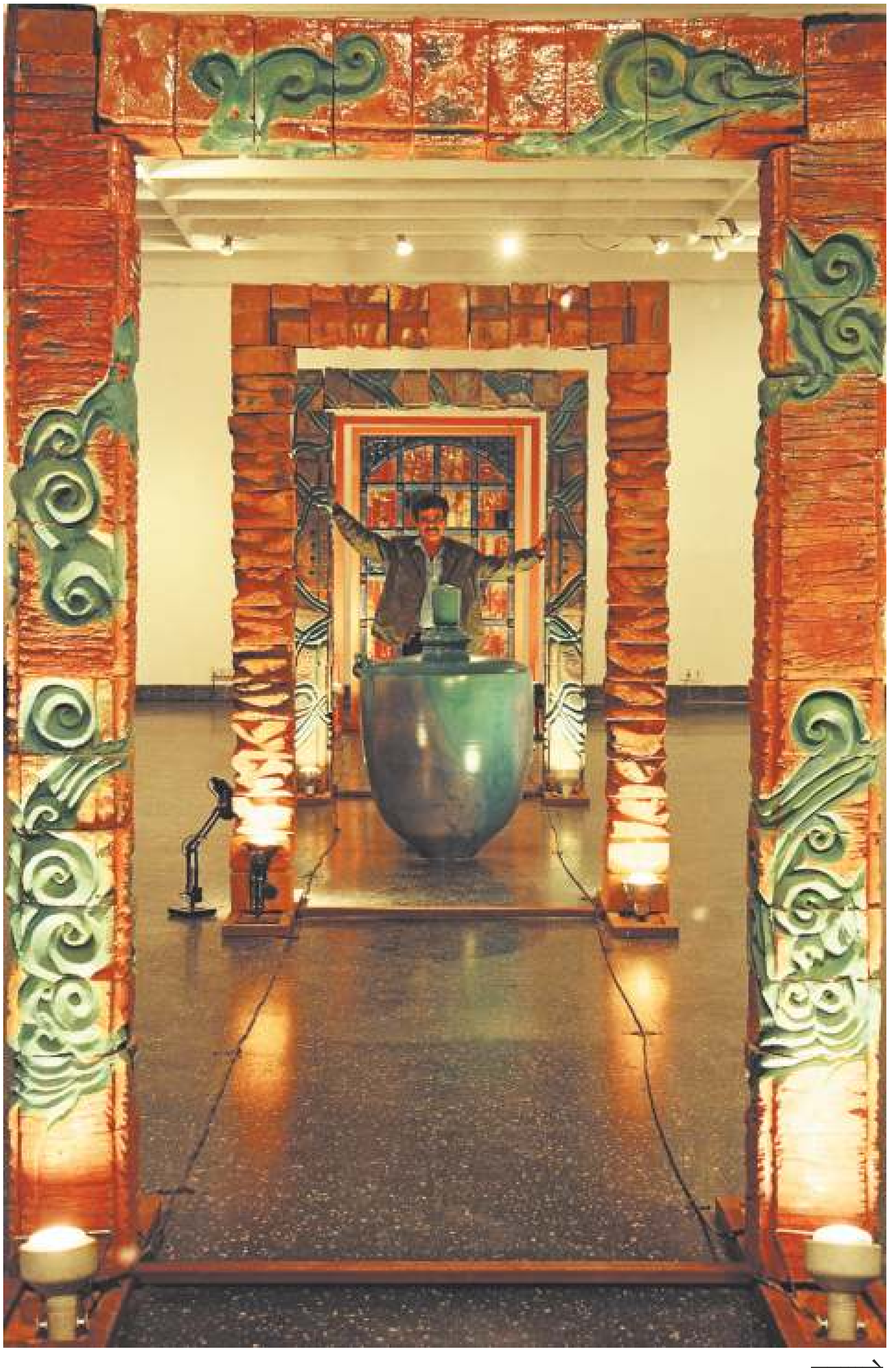

दरवाज़े

दरोज़ का जन्म तेलंगाना के मेहबूब नगर ज़िले के एक छोटे-से गाँव में 5 मई 1944 को एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पिता जनार्दन पेशे से सुनार थे। यह इलाका धान के खेतों, इमली के पेड़ों, विशालकाय चट्टानों और लम्बाड़ी आदिवासियों के समूह से बना था। दरोज़ तब दो साल के होंगे। एक दिन वे खेत गए। शाम हुई तो किसी को उनकी सुध आई। घर के लोग घबराकर शोर मचाते हुए उन्हें खोजने लगे। इतने में एक लम्बाड़ी आदिवासी औरत उन्हें गोद में उठाए हुए घर आई। वे उसके शकरकन्द के खेत में थे जहाँ हाल ही में फसल निकाली गई थी। दरोज़ वहाँ पौधे के तने से निकल रही नई डाली को ज़मीन से उखाड़ने की कोशिश कर रहे थे। उस महिला ने बच्चे को पहचान लिया क्योंकि वह दरोज़ के घर जलाऊ लकड़ी बेचने आती थी। मिट्टी से दरोज़ की यह पहली मुलाकात थी।

दरोज़ चार किलोमीटर पैदल चलकर स्कूल पहुँचते। रास्ते में इमली के पेड़ के नीचे साँप-बिच्छुओं को ठण्डी हवा में आराम करते देखने में या पोखर में मछली पकड़ने में उन्हें बहुत मज़ा आता। वे खुद को खुशकिस्मत समझते थे कि उनका जन्म गाँव में हुआ है। तभी तो वे कुदरत को इतना करीब से देख-सुन सके...उससे प्रेम कर सके।

वे एक सुनार परिवार से थे। कीमती धातुओं से सुन्दर वस्तुओं का गढ़ा जाना वो रोज़-रोज़ देखते। पर उनकी जान तो मिट्टी के लचीलेपन में बसती थी। युवा दरोज़ के मन में सुनारी के कलात्मक माहौल से भी कई बातें आ बसी थीं। सुनारी की दो अहम चीज़ें – शुद्धता और बारीकी – दोनों दरोज़ के कामों में दिखती हैं। खासकर सिर पर पहननेवाली चीज़ों पर बनी उनके शिल्प और नब्बे के दशक की कलाकृतियाँ। इनमें तेलंगाना के पारम्परिक आभूषण – हेयर पिन, नथ, ऐरन शामिल हैं। दरोज़ ने अपने पिता को इन्हें गढ़ते देखा था।

बचपन में दरोज़ गणेशोत्सव पर गणेश की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने में पिता की मदद करते थे। मिट्टी के काम में उन्हें बड़ा मज़ा आता। वे घर की छत से मिट्टी के बर्तन पकाने के लिए कुम्हारों को भट्टियाँ जलाते देखते। ताड़ के पत्तों से जलाई इन भट्टियों से निकलता धुआँ देखना उन्हें अच्छा लगता।

16 साल की उम्र में उन्होंने अपना गाँव कलवा कुर्थी और बड़ा परिवार छोड़ दिया था। इस तरह अपने लिए एक खिड़की खोल ली थी। पर बचपन की कल्पनाएँ उनके साथ बनी रहीं।

1961 में उन्होंने हैदराबाद के आर्ट स्कूल में दाखिला लिया। यह उनकी लम्बी और घुमावदार कलात्मक यात्रा का पहला कदम था। हैदराबाद आर्ट स्कूल के पाँच साल के कोर्स में फाइन आर्ट्स (ड्रॉइंग व पेंटिंग) के साथ-साथ उन्होंने टेक्सटाइल डिज़ाइन, धातु पर नक्काशी और चर्म शिल्प का भी अध्ययन किया। वे कहते हैं, "मैं चीज़ों के अध्ययन में अच्छा था। पर मैं हाथ से काम करना चाहता था और कुछ ऐसा करना चाहता था जिसमें हाथ और दिमाग दोनों शामिल हों।"

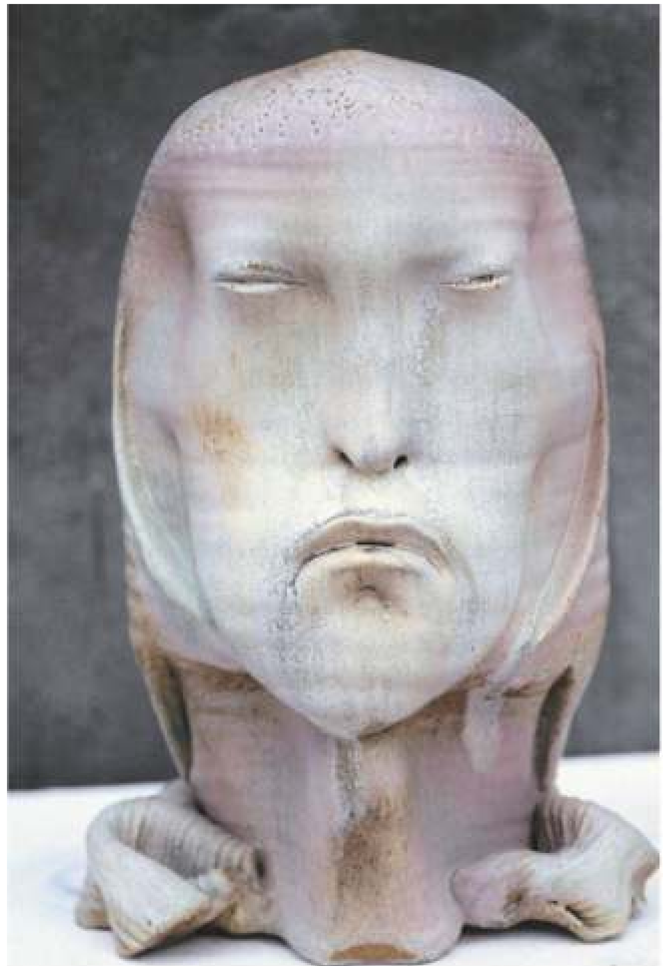

एक लामा का सिर

"हमारे दिमाग में रचनात्मक विचारों की कई पेचीदा गठानें हैं। इन विचारों की शाखों को आपस में उलझ जाने दो। एक दिन वहीं कहीं से नई शाख बाँस की डाली की तरह पूरी ताकत से निकलेगी।"

- दरोज़

आज 40 वर्ष बाद दरोज़ का नाम मिट्टी के बड़े-बड़े प्रतिष्ठापन (Ceramic installation) बनाने से जुड़ा है। सिरैमिक (यानी आग में पकाई मिट्टी) के अन्तर्गत टेराकोटा (अच्छी तरह पकाए गए भूरे लाल रंग की मिट्टी के बर्तन या मूर्तियाँ), पत्थर की बनी वस्तुएँ (Stone ware), चीनी मिट्टी के बर्तन (Porcelain) आते हैं। इनमें जो अन्तर है वह मिट्टी की संरचना (compositon) और पकने के लिए आवश्यक तापमान में है। 1970 के दशक में भारत के आर्ट कॉलेजों में केवल टेराकोटा (मिट्टी जिसका उपयोग हमारे पारम्परिक कुम्हारों द्वारा किया जाता है) ही पाठ्यक्रम में शामिल था।

"पृथ्वी से पेड़, पौधे, झाड़ियाँ... उगती हैं... और हम कुम्हार... हम चाक से पृथ्वी उगाते हैं।"

- दरोज़

सहजीवन

मिट्टी के काम में दरोज़ के हुनर को देखकर उनके मित्रों ने उन्हें आर्ट स्कूल वड़ोदरा में सिरैमिक पढ़ने के लिए उकसाया। इसके लिए उन्हें आन्ध्रप्रदेश ललित कला से स्कॉलरशिप के लिए आवेदन करना था। संकोची स्वभाव के दरोज़ के लिए वड़ोदरा विदेश जाने का सपना देखने जैसा था। हिन्दी का अज्ञान और ग्रामीण पृष्ठभूमि उन्हे पीछे खींच रही थी। पर दोस्तों के ज़ोर देने पर उन्होंने स्कॉलरशिप के लिए इंटरव्यू दिया। इसके लिए उन्होंने अपने दोस्तों से सिरैमिक के बारे में थोड़ी जानकारी हासिल कर ली थी। उन्होंने कुम्हार से मिट्टी का एक बर्तन खरीदा और उसे रंगकर इंटरव्यू लेनेवालों के सामने रख दिया। जजों ने उनके काम को बहुत पसन्द किया और उन्हें स्कॉलरशिप मिल गई।

दरोज़ ने 1970 में 26 साल की उम्र में वड़ोदरा आर्ट स्कूल में अध्ययन शुरू किया। माटी की उनकी यात्रा बर्तन बनाने से शुरू हुई थी। पर इसमें एक ज़बरदस्त मोड़ तब आया जब हाँस कोपर के कामों से उनका परिचय हुआ। कोपर को इस सदी का कुम्हार (पॉटर) कहा जाता है। यह कोपर का आधुनिकवादी सौन्दर्यशास्त्र था जिसने दरोज़ की सोच को पूरी तरह से झझोड़ दिया। उन्होंने जाना कि जब एक रूपाकार (फॉर्म) उलटकर एक दूसरे स्वतंत्र रूपाकार से जुड़ जाता है तो कैसी नई सम्भावनाएँ खुल जाती हैं। ऐसा होने से एक अमूर्त्त विलक्षण छवि बन जाती है। कोपर का एक बड़ी बोतल जैसा आकार मूर्तिकला में रुचि रखनेवालों को बेहद दिलचस्प लगा। दरोज़ हमारे गाँवों में नज़र आनेवाले बर्तनों और घरों में इस्तेमाल होनेवाले धातु के आम बर्तनों में भी उसी तरह के अमूर्त्त आकारों की कल्पना करने लगे। वे अपने आसपास को अपनी प्रेरणा स्रोत के रूप में अनुभव करने लगे। दरोज़ कहते हैं कि "कोपर से मिलने के बाद अचानक मुझे एहसास हुआ कि अब मैं मिट्टी के शिल्प बनाने का मतलब जान गया हूँ। वो हमारे पास ही है, उसे समझने के लिए हमें दुनियाभर में देखने की ज़रूरत नहीं है।" मिट्टी-कला को देखने-समझने का उनका नज़रिया अब पूरी तरह से बदल गया था। अस्सी के दशक के पारम्परिक कटोरों की "उरली" श्रृंखला इस सिलसिले में खास है।

पुडुचेरी में एक दिन उन्होंने चाक पर एक मिट्टी का बर्तन बनाया। उसे देख उनके एक दोस्त ने कहा कि इसे और सुन्दर बनाने के लिए इसके ऊपर कुछ लगा क्यों नहीं लेते! दरोज़ ने जवाब दिया कि वे इसे सुन्दर व आकर्षक बनाने के लिए इसे सजाएँगे। घर-परिवार में सुनारी का काम होने के नाते सजाने का काम उसके स्वभाव में बसा है।

दक्षिण भारत के भव्य मन्दिरों के गोपुरम (प्रवेश द्वार) दरोज़ की मिट्टी की कलाकृतियों की अगली सिरीज़ के लिए प्रेरणा स्रोत बने। वे

दक्षिण में नए मन्दिरों के सुन्दर-सजीले शिखरों को देखने व उनके चित्र बनाने में घण्टों गुज़ार देते थे। मन्दिर के शिखर के लटकते हुए निचले हिस्से दरोज़ को बेहद आकर्षित करते। नीचे से देखने पर वे उड़ती हुई शानदार वस्तुओं जैसे लगते।

गोल्डन ब्रिज के अहाते में एक पुराना पेड़ था। यहाँ पक्षियों व कीड़ों का हमेशा जमघट लगा रहता। दरोज़ देखते कि कैसे कीड़ों के पेड़ के तने में छेद करते रहने से वहाँ एक रास्ता-सा बन गया था। और अब पक्षी उससे आने-जाने लगे थे। इन सब दृश्यों की याद करते हुए उसने दो प्लेटों को जोड़ते हुए बर्तनों की एक सिरीज़ बनाई। इसे UFO (unidentific flying objects या उड़नतश्तरी) सिरीज़ नाम दिया।

इसके अगले साल उन्होंने सहजीवन (symbiosis) पर मिट्टी से एक कड़ी बनाई। इसे बनाने से पहले उन्होंने असंख्य रेखाचित्र बनाए। हिन्दुस्तानी गाँवों में कुँओं की घिरनी, सुराही, लालटेन आदि से दरोज़ को अपनी कलाकृतियों के लिए प्रेरणा मिली। मिट्टी की कलाकृतियों में आधार के लिए बाँस का उपयोग करने की प्रेरणा उन्हें सारावाक के जंगलों से मिली। खुशदिल, रंगीन मिजाज़ और ऊर्जा से भरे दरोज़ के ये गुण उसकी कलाकृतियों में भी झलकते हैं।

दरोज़ को 1972 में बांग्लादेश टेराकोटा भित्ति के काम में प्रोफेसर के. जी. सुब्रमण्यम के साथ काम करने का मौका मिला। उन्हें समझ में आया कि अपने काम में परम्परा व आज के समय का जुड़ाव होना ज़रूरी है। चक मक

“मिट्टी के साथ काम करना हमारे अहम को खत्म करता है। मिट्टी की कलाकृतियाँ बनाते समय हम उसे हर वक्त बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। यह एक माध्यम है जो माँग करता है कि आप किसी तरह का स्वामित्वभाव मन में न पालें... आप तटस्थ रहें। यह बात मानवीय व्यवहार को आध्यात्मिकता से जोड़ती है।”

- दरोज़

चूज़े की एक माँ

दिलीप चिंचालकर

अब मैं कोई बिलौटा तो नहीं था जो कमरा भर इंसानों की बातचीत में उस चहक को पहचानकर मौका झपट लेता। वहाँ कोई दर्जन भर शिक्षक थे। पीपल के झुरमुट वाली पाठशाला में जो चित्तूर ज़िले के सदुम तहसील में चलती है, सुबह की चाय की छुट्टी थी। मैं घूम-घूमकर सबसे मिलकर बात कर रहा था। रह-रहकर किसी पंछी के चूज़े की आवाज़ आ रही थी। मैं समझा आजकल के किसी जेबी टेलीफोन की पुकार होगी। थोड़ी देर बाद शिक्षकों को उनकी अगली कक्षा के सबक तैयार करने के लिए छोड़कर मैं उनकी किताबें देखने लगा। जैसे ही मैंने तितलियों की एक पुस्तक की ओर हाथ बढ़ाया वह चहक फिर से सुनाई दी। ऐन मेरी बाँह के पास से। वहाँ एक सचमुच का चूज़ा था। ड्रॉन्गो का चूज़ा। एक बक्से के ऊपर रखी पतली-सी टहनी पर वह इत्मीनान से बैठा था। अरे!

मैंने उससे कहा "हैलो!" उसके जैसी चिंचियाती बोली में कुछ कहता तब भी वह समझ नहीं पाता। इस अँग्रेज़ी-भाषी शाला में शायद उसने हैलो अधिक बार सुनी हो। वह निश्चिन्त बैठा रहा। मुझे तो यह तक समझ में नहीं आया कि वह मेरी ओर देख भी रहा है या नहीं। तभी पीछे से शमीम की आवाज़ आई "यह मेरा बच्चा है।" शमीम प्राणीशास्त्र की अध्यापिका है। "ज़रूर!" मैंने कहा। इस प्राणी और एक प्राणीशास्त्री के बीच कोई तो रिश्ता होना ही चाहिए।

ड्रॉन्गो या भुजंगा का वह चूज़ा उसे पिछले हफ्ते एक पेड़ के नीचे पड़ा मिला था। ऊपर शाख पर एक घोंसला था। अगले चार दिनों में मुझे समझ में आ गया कि अलग-अलग पंछियों के ऐसे चूज़े स्कूली बच्चे रोज़ ही उसके पास ले आते हैं। चूज़ों के दाना-पानी, रख-रखाव की हिदायत देकर शमीम अमूमन उन्हें उन बच्चों को ही सौंप देती है। इस चूज़े को शमीम ने अपने पास रख लिया।

मैं असमंजस में था कि वह इस मुट्ठी भर के चूज़े को खिलाती कैसे है? चूज़ा तो कुछ चीन्ह भी नहीं पा रहा था। अभी कुछ समय पहले ही मैंने कबूतर के दूध के बारे में पढ़ा था। कैसे एक कबूतरी या फाख्तन चुग्गे को चबा और गलाकर उसका दूध बनाती है और घोंसले में बैठे बच्चे केवल वही निगल सकते हैं। रोटी के टुकड़े या ड्रॉपर से पिलाया गाय-भैंस का दूध नहीं।

पता चला कि शमीम उसके लिए घास में फुदकनेवाले कीट पकड़ लाती है। ग्रासहॉपर या टिड्डे तो बहुत बड़े होते हैं। ये घास-फुदके ठीक वैसे ही मगर आकार में नाखून बराबर थे। शमीम ने उन्हें पकड़ने का तरीका बताया। कक्षा के बाहर उगी घास-फूस में वह पैर मारकर चहलकदमी करने लगी। इससे जड़ों में छुपकर सुस्ताते हुए घास-फुदके उछलकर घास की पत्तियों पर जा बैठे। शमीम ने झपट्टा मारकर उन्हें मुट्ठी में पकड़ लिया। फिर धीरे-धीरे मुट्ठी खोलते हुए उन्हें चुटकी में थाम लिया। यह चुग्गा चूज़े को पेश किया तो वह चींचींचीं के साथ उसे ज़िन्दा ही गटक गया। मैंने भी कोशिश की। पन्द्रह-बीस मिनटों की मशक्कत के बाद एक घास-फुदका पकड़ में आया। मैंने कहा, "भई, अभी अगहन में यह हाल है तो आगे पूस-माघ में कीड़े मिलेंगे ही नहीं।" "तब पंछी अण्डे भी नहीं देंगे।" शमीम ने प्राणियों का शास्त्र बताया।

इस सबके बाद चूज़ा मेरा पकड़ा चुग्गा खाने के लिए तैयार ही नहीं था। तब शमीम ने चूज़े के चेहरे के पास हाथ नचाकर तेज़ हरकत की और चूज़ा पंख थरथराते हुए चूँ-चूँ करने लगा। अब जल्दी से खिलाओ इसे- शमीम ने कहा। चूज़ा मेरा दिया चुग्गा निगल गया। फिर शून्य में टुकर-टुकर ताकने लगा। चूज़े के सामने कुछ हिलाने से उसे लगता है कि चिड़िया माँ आ गई। और वह चोंच खोलकर चूँ-चूँ के साथ खाना माँगने लगता है। अब मुझे समझ में आया कि पुस्तक लेने के लिए हाथ बढ़ाते ही वह क्यों चिचियाने लगा था।

चूज़ा शमीम के साथ शिक्षक-कक्ष, बच्चों की कक्षा और छात्रावास घूमता रहता। दिन भर मिलनेवाले घास-फुदके मज़े से निगलकर रोज़ मुटिया रहा था। फिर चार दिन बाद मेरा मुकाम खत्म हो गया और मैं वहाँ से चला आया। मुझे विश्वास है कि शमीम ने उसे उड़ना भी सिखाया होगा। आखिर वह एक शिक्षिका थी। प्राणीशास्त्र की जानकार शिक्षिका... और उसकी माँ भी।

पंजाबी बाल उपन्यास

(चौथी किस्त)

भयानक बाढ़ और उसके बाद

जसबीर भुल्लर

उसने चौंककर आँखें खोल लीं। मग्घू मगर भी घबराकर उसके नीचे से सरक गया। दोनों ने हैरानी से पानी की ऊँची दीवार की ओर देखा। पानी की दीवार तेज़ी-से उन की ओर बढ़ रही थी। वे कुछ समझ पाते इससे पहले ही पानी के बहाव ने उन दोनों को उलटा दिया। नदी में पहले भी अचानक बाढ़ आ चुकी थी। हर बार पानी जीवों पर कहर बरसाकर आगे बह जाता था। पर इस बार तो जैसे कोई बाँध ही टूट गया था। बाढ़ ने दूर तक जंगल को अपनी चपेट में ले लिया था। बेखबर बैठे जीवों को पानी का तेज़ बहाव बहा ले गया। बिलों में पानी भर जाने से कई जीव बिलों में ही दम घुटने से मर गए।

यह समय मादा किरली मगर पर भी बहुत भारी था। उसने बार-बार पंजे जमाने की कोशिश की पर हर बार असफल रही। और पानी के बहाव के साथ दिशाहीन-सी बह गई।

पानी जंगल पर कहर बरसाकर उतर गया। पानी के उतरने के बाद जंगल में विनाश के निशान साफ दिखाई देने लगे थे। हरे-भरे पत्तोंवाली झाड़ियाँ और लहलहाती घास मिट्टी से अट गई थी। पेड़ों की उखड़ी जड़ें मिट्टी माँग रही थीं। जंगल में जगह-जगह कीचड़ और मटियाले पानी के छोटे-छोटे तालाब बन गए थे। एक उखड़े दरख्त में किरली का शरीर अटका हुआ था। शायद वह लगातार गिरने से, बहने से बेहोश हो गई थी।

जब वह सुध में आई तो धूप निकली हुई थी। गरमी से उसका शरीर तपने लगा था। शरीर का तापमान घटाने के लिए उसे पानी में जाने की ज़रूरत थी। पर वहाँ तो पानी का नामोनिशान नहीं था। वह हैरान रह गई। उसके चारों तरफ जंगल था। पेड़ की मोटी टहनियों में से निकलने के लिए उसने पूँछ इधर-उधर पटकी। फिर ज़ोर-से अँगड़ाई ली। पेड़ की टहनियाँ कड़-कड़ की आवाज़ के साथ टूट गईं। टहनियों से निकलकर वह एक पल के लिए ठिठक गई। अब वह किस ओर जाए?

किरली को ऐसा कोई डर न था कि वह पानी के बिना मर जाएगी। पानी से उसका रिश्ता मछलियों जैसा नहीं। मगरमच्छों की जीवन शैली और आदतें मछलियों से बिलकुल अलग हैं। मगरमच्छ पानी के भीतर साँस नहीं ले सकते हैं।

चित्रः अतनु राय

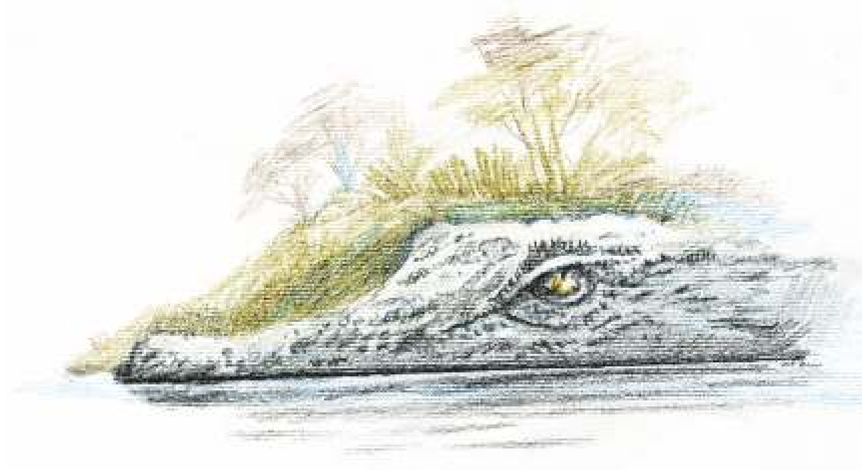

साँस लेने के लिए उन्हें पानी से बाहर आना ही पड़ता है। यह बात अलग है कि वे पानी के भीतर बहुत देर तक साँस रोके रह पाते हैं। फिर भी मगरमच्छ पानी और ज़मीन दोनों जगहों में आसानी से घूम-फिर सकते हैं। मगरमच्छ इसी सख्तजानी की वजह से सैकड़ों सालों से बचे हुए हैं।

किरली के लिए पानी का मतलब हवा और ज़मीन जितना ही था। उसकी प्यास भी नदी से बुझती थी और नदी में ही मछलियाँ थीं जो उसका मुख्य भोजन बनती हैं। और फिर शरीर का तापमान सन्तुलित रखने के लिए भी तो उसे पानी की ज़रूरत पड़ती थी। किरली मगरमच्छ पानी की खोज में चल दी। रास्ते में कई जगह कीचड़ और गारे से भरे गड्डे मिले। उनमें लोट-लोटकर उसने अपने तपे हुए शरीर को कुछ ठण्डा किया। कई जगह उसे पानी से भरे गड्डे भी मिले। किरली मगरमच्छ वहाँ अपना घर बनाकर नहीं रह सकती थी। वे गड्डे तो दो-चार दिन में ही सूख जाते। यूँ भी गड्डे उसके रहने के हिसाब से बहुत छोटे थे। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था किरली मगरमच्छ की भूख भी तेज़ हो रही थी। लेकिन भोजन खोजने से पहले तो पानी खोजना था।

वह चलती गई, चलती गई। उसे अपनी नदी बहुत याद आई। नदी के होते हुए उसे भोजन की कोई चिन्ता न थी। नदी के अन्दर भी भोजन होता था और बाहर भी। रास्ते में किरली मगरमच्छ मिट्टी की एक ढेरी से अटककर रुक गई। यह किसी जानवर की लाश थी जो बाढ़ में डूबकर मर गया था। उसके ऊपर पत्थर, कंकर और मिट्टी चढ़ी हुई थी। किरली मगरमच्छ जानवर को पत्थर, कंकर और मिट्टी सहित हजम कर गई। उसे इससे कोई परेशानी नहीं हुई। मगरमच्छ आदतन ही कई-कई किलो पत्थर अपने पेट में उठाए फिरते हैं। ये पत्थर भोजन को हज़म करने में भी मगरमच्छों के सहायक होते हैं और चलते समय उनके शरीर का सन्तुलन भी ठीक रहता है।

पेट भरकर किरली पास के पेड़ की छाँव में लेट गई। शरीर का तापमान कुछ कम हुआ तो वो फिर से चल दी। अचानक झाड़ियों के बीच उसे पानी की झलक मिली। किरली की जान में जान आई। दूसरे मगरमच्छों की तरह किरली भी देखने में सुस्त-सी थी। लेकिन पानी की झलक ने उसके अन्दर फुर्ती भर दी थी। पेट और पंजों के बल रेंगने की बजाए वह छलाँगें मारते हुए भागने लगी।

झाड़ियों के बीच में सचमुच ही पानी से भरी तलैया थी। किरली ने राहत की साँस ली। कुछ भी सोचने से पहले वह पानी में घुस गई। उसने तलैया के दो-तीन चक्कर लगाए। कल रात की बाढ़ के बाद ये खुशी के दो पल थे। उसने आँखें मूँद लीं और पानी में अपना शरीर ढीला छोड़ दिया। इससे पहले वह अपने जीवन के संघर्ष में इतनी मग्न हो गई थी कि उसे कुछ याद नहीं रहा था। जब पानी ने उसके तन-मन को शीतल किया तो उसे अचानक मग्धू की याद आई।

पता नहीं वो कहाँ होगा? जाने वो फिर से मिल भी पाएँगे या नहीं?

किरली तलैया से बाहर निकलकर लेट गई। उसने अपना मुँह पूरा खोल लिया था और आँखें मूँद ली थीं। आराम करते समय इस तरह मुँह खोले रखना भी मगरमच्छों का शरीर के तापमान को उचित स्तर पर रखने का एक तरीका है। मुँह खुला देखकर पक्षियों का एक जोड़ा किरली मगरमच्छ के मुँह में आकर बैठ गया। दोनों पक्षी किरली के दाँतों में फँसा भोजन चोंच से कुरेद-कुरेदकर खाने लगे। इससे उन पंछियों का पेट भी भर रहा था और किरली के दाँत भी साफ हो रहे थे। पक्षियों की चोंच की चोट से किरली को मीठी-मीठी गुदगुदी हो रही थी। इस गुदगुदी भरी जलन का अपना ही मज़ा था।

लेटे-लेटे किरली के मन में तलैया को अन्दर से पूरी तरह से देखने का ख्याल आया। वह मुँह बन्द करने लगी तो दोनों पक्षी उड़ गए...।

(अगले अंक में जारी)

फनी पाठशाला

प्यारे नैनो मित्रो!

पिछले दिनों दिल्ली के अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेले में मैं जब पहुँचा तो घूमता हुआ तुम्हारी पत्रिका चकमक के स्टॉल पर पहुँच गया। जहाँ सुशील जी ने मुझे झट-से पहचान लिया। शुक्रिया फेसबुक! उन्होंने मेरे सामने तुम से जुड़ने का प्रस्ताव रख दिया। और कहा कि मैं हर महीने किन्हीं ताज़ा मुद्दों पर कार्टून बनाऊँ और तुम्हें भी कार्टून बनाने का न्यौता दूँ।

इस समय तो तुम्हारे इम्तिहान चल रहे होंगे या शुरू होनेवाले होंगे। पता है, एक कार्टूनिस्ट का तो रोज़ ही इम्तिहान होता है। सुबह-सुबह ढेर सारे अखबार पढ़ना और शाम को एक कार्टून बनाना। इसे सम्पादक नाम के मास्साब जाँचते हैं – पास हो जाते है तो अगले दिन परीक्षा परिणाम कार्टून के रूप में छप जाता है। दोस्तो, कार्टून आम आदमी की आवाज़ होती है इसीलिए रोज़ सुबह सबसे पहले पाठक अखबार में कार्टून के रूप में अपनी "आवाज़" ढूँढता है।

कार्टून आमतौर पर दो परिस्थितियों में बनते हैं – एक जिस घटना पर आपको यकायक हँसी/गुस्सा आ जाए याकि हैरत हो। तो मित्रो, इम्तिहानों की वजह से तुम्हारे पास भी वक्त की कमी होगी। इसलिए जल्दी-से ये दो कार्टून देखो।

हाँ, इस महीने यानी अप्रैल की किसी भी एक या दो घटनाओं पर अपने कार्टून चकमक के पते पर भेजना। इनमें से मेरी पसन्द के कुछ कार्टून तुम्हें अगले अंक में देखने को मिलेंगे। और उनके रचनाकारों को उपहार के रूप में मिलेगी चकमक की एक साल की सदस्यता।

तो मिलते हैं अगले अंक में....

– इरफान

बोलीरंगोली

चुनिन्दा 15 चित्र

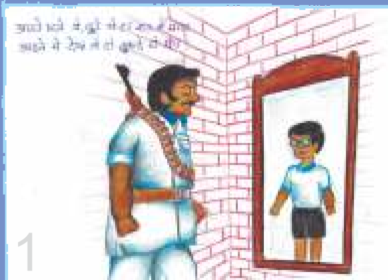
1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

1.सुमित रंजन, आठवीं, डी.पी.एस, पटना। 2. द्रोपदी कुशवाहा, छठी, विश्वास स्कूल, गुड़गाँव। 3.सुहानी सक्सेना, पाँचवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल। 4.परी, आठ साल, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल। 5. पूर्णिमा वी, छठी, डी.पी.एस कोयम्बतूर। 6.तब्बू, लक्ष्य समूह, दिगन्तर। 7.ओम गुप्ता, आठवीं, धारावी आर्ट रूम, मुम्बई। 8.डियू, दूसरी, लाख्या आर्ट, गुड़गाँव। 9.शारदा मणि, दसवीं, डी.पी.एस, पटना।10.करिश्मा, नीलम समूह, दिगन्तर।11.अंशिका सिंह, छठी, केन्द्रीय विद्यालय नं. 1, भुज, गुजरात। 12.संतोष यादव, छठी, केन्द्रीय विद्यालय नं. 1, भुज, गुजरात।13.इश्वरी गोरे, पाँचवीं, रायन इन्टरनेशनल स्कूल, मुम्बई। 14.शिवोहम, दूसरी, सरदार पटेल विद्यालय, नई दिल्ली।15.अनुराधा, नीलम समूह, दिगन्तर।

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2015-17

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल